

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180012

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1 ~ Accession No. PG H665
S56G

Author श्रीपतराय. संपा.

Title गह्य-संसार-माला-प्रका. 1. 1946.

This book should be returned on or before the date
last marked below.

गल्प-संसार-माला

भाग — १ : हिंदी

— संपादक —

श्रीपतराय

: लेखक-गण :

प्रेमचंद

‘अश्वेत’

‘सुदर्शन’

राधाकृष्ण

जैनेंद्रकुमार

उपादेवी मित्रा

जयशंकर ‘प्रसाद’

कमलाकांत वर्मा

भगवतीचरण वर्मा

कमलादेवी चौधरी

सियारामशरण गुप्त चंद्रगुप्त विद्यालंकार

विश्वंभरनाथ शर्मा ‘कौशिक’ पदुमलाल पुनलाल दखशी

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

बनारस
शरस्वती प्रेस

प्रथम संस्करण, मार्च, १९३८

३०००

द्वितीय संस्करण, जून, १९४०

२०००

तृतीय संस्करण, जून, १९४३

१०००

चौथा संस्करण, मार्च, १९४६

३०००

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—
श्रीपतराय,
सरस्वती प्रेस, बनारस ।

सूची

प्रेमचंद	: ईदगाह	...	५
जयशंकर 'प्रसाद'	: मधुश्रा	...	२०
विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'	: इक्केवाला	...	२७
'सुदर्शन'	: एथेंस का सत्यार्थी	...	३६
पदुमलाल पुजालाल बरुशी	: भजनमला	...	४४
जैनेन्द्रकुमार	: खेल	...	४६
भगवतीचरण वर्मा	: प्रायश्चित्त	...	५२
भगवतीप्रसाद वाजपेयी	: उपहार	...	५८
सियारामशरण गुप्त	: पथ में से	...	६७
कमलादेवी चौधरी	: स्वप्न	...	७१
'अज्ञेय'	: शत्रु	...	८२
चंद्रगुप्त विद्यालंकार	: एक सप्ताह	...	८३
राधाकृष्ण	: मैना	...	९९
उषादेवी मित्रा	: प्यासी हूँ	...	१०८
कमलाकांत वर्मा	: पगडंडी	...	१२४

पाठ्य पुस्तक

ईदगाह

रमजान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृत्तों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है। पड़ोस के घर में सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गये हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असंभव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज़ है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज़ ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिंताओं से क्या प्रयोजन! सेवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवैयाँ खायेंगे। वह क्या जानें अम्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौधरी आज आखिरी बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाय। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खजाना निकालकर गिनते हैं, और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक, दो, दस, बारह! उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास, एक, दो, तीन, आठ, नौ पंद्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीज़ें लायेंगे—खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या। और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद, वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हेजे की भेंट हो गया और मा न जाने क्यों

पीली होती-होती एक दिन मर गई । किसी को पता न चला क्या बीमारी है । कहती भी तो कौन सुननेवाला था । दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से विदा हो गई । अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है । उसके अब्बाजान रुपये कमाने गये हैं । बहुत-सी थैलियाँ लेकर आयेंगे । अमीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीज़ें लाने गई हैं ; इसलिए हामिद प्रसन्न है । आशा तो बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चों की आशा ! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है । हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है । जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अमीजान नियामतें लेकर आयेंगे, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा । तब देखेगा महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे । अभागिनी अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है । आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं ! आज आदि होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती ! इस अंधकार और निराशा में वह डूबी जा रही है । किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को । इस घर में उसका काम नहीं है ; लेकिन हामिद ! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब ? उसके अंदर प्रकाश है, बाहर आशा ! विपत्ति अपना सारा दल-बल लेकर आये, हामिद की आनंद-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी ।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्मा, मैं सबसे पहले आऊँगा । बिलकुल न डरना ।

अमीना का दिल कचोट रहा है । गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं । हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है । उसे कैसे अकेले मेले जाने दे । उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाय तो क्या हो । नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी । नन्हीं-सी जान ! तीन कोस चलेगा कैसे ! पैर में छाले पड़ जायेंगे । जूते भी तो नहीं हैं । वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगा ; लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकायेगा ! पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती । यहाँ तो घंटों चीज़ें जमा करते लगेंगे ।

मांगे ही का तो भरोसा ठहरा । उस दिन फहीमन के कपड़े सिये थे । आठ आने पैसे मिले थे । उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी, इसी ईद के लिए ; लेकिन कल ग्वाजन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती । हामिद के लिए कुछ नहीं है, तो दो पैसे का रोज़ दूध तो चाहिए हो । अब कुल दो आने पैसे बच रहे हैं । तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटवे में । यही तो बिसात है और ईद का त्योहार, अल्लाह ही बेड़ा पार लगाये । घोबिन और नाइन और मेहतरानी और चूड़ीहारन सभी आयेंगी । सभी को भेवैयाँ चाहिए और थोड़ा किसो की आँखों नहीं लगता । किस-किस से मुँह चुरायेगी । और मुँह क्यों चुराये ! साल-भर का त्योहार है । ज़िंदगी ख़ैरियत से रहे, उनकी तक़दीर भी तो उसी के साथ है । बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जायँगे ।

गाँव से मेला चला । और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था । कभी सब-के-सब दौड़कर आगे निकल जाते । फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथवालों का इंतज़ार करते । यह लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं ! हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गये हैं । वह कभी थक सकता है ! शहर का दामन आ गया । सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं । पक्की चार-दीवारी बनी हुई है । पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं । कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठाकर आम पर निशाना लगाता है । माली अंदर से गाली देता हुआ निकलता है । लड़के वहाँ से एक फ़र्लांग पर हैं । ख़ूब हँस रहे हैं । माली को कैसा उल्लू बनाया है ।

बड़ी-बड़ी हमारतें आने लगीं । यह अदालत है, यह कॉलेज है, यह क्लबघर है । इतने बड़े कॉलेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे ! सब लड़के नहीं हैं जी ! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच । उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं । इतने बड़े हो गये, अभी तक पढ़ते जाते हैं । न-जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर । हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिलकुल तीन कौड़ी के, रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुरानेवाले । इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या । क्लबघर में जादू होता है । सुना है, यहाँ मुर्दों की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं । और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं ; पर किसी को अंदर नहीं

जाने देते । और यहाँ शाम को साइब लोग खेलते हैं । बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूछों-दाढ़ीवाले । और मेमें भी खेलती हैं, सच । हमारी अम्मा को वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें, घुमाते ही लुढ़क जायँ ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला क्रसम ।

मोहसिन बोला—चलो, मनो आटा पीस डालती हैं । ज़रा-सा बैट पकड़ लेंगी, तो हाथ काँपने लगेंगे । सैकड़ों घड़े पानी रोज़ निकालती हैं । पाँच घड़े तो तेरी भैस पी जाती है । किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले आँखेरा आ जाय ।

महमूद—लेकिन दौड़ों तो नहीं, उल्ल-कूद तो नहीं सकतीं ।

मोहसिन—हाँ, उल्ल-कूद नहीं सकतीं ; लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्मा इतना तेज़ दौड़ों कि मैं उन्हें न पा सका, सच ।

आगे चले । हलवाईयों की दूकानें शुरू हुई । आज ख़ूब सजी हुई थीं । इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है ! देखो न, एक-एक दूकान पर मनो शौंगी । सुना है, रात को ज़िन्नात आकर खरीद ले जाते हैं । अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह सब तुलवा लेता है और सममुच के रुपये देता है, बिलकुल ऐसे ही रुपये ।

हामिद को यक़ीन न आया—ऐसे रुपये ज़िन्नात को कहाँ से मिल जायँगे ?

मोहसिन ने कहा—ज़िन्नात को रुपयों की कमी ! जिस खज़ाने में चाहें चले जायँ । लोहे के दरवाज़े तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, अगर हैं किस फेर में । हीरे जवाहरात तक उनके पास रहते हैं । जिससे ख़ुश हो गये, उसे टोकरों जवाहरात दे दिये । अभी यहाँ बैठे हैं, पाँच मिनिट में कहीं उलकता पहुँच जायँ ।

हामिद ने फिर पूछा—ज़िन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे ?

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी ! ज़मीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे ; अगर चाहें तो एक लोटे में घस जायँ ।

हामिद—लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे ? कोई मुझे वह मंत्र बता दे तो एक जिन को खुश कर लूँ ।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता ; लेकिन चौधरी साहब के क्राव में बहुत से जिन्नात हैं । कोई चीज़ चोरी जाय, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे । जुमेराती का बछ्वा उस दिन खं गया था । तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला । तब भूक मारकर चौधरी वे पास गये । चौधरी ने तुरंत बता दिया, मवेशी खाने में है, और वहीं मिला जिन्नात आकर उन्हें सारे जद्दान को खबरें दे जाते हैं ।

अब सबकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है ।

आगे चले । यह पुलिस-लाइन है । यहीं सब कानिस्टिबल क़वायद करते हैं । रैटन ! फाय फा ! रात को बेचारे घूँप-घूमकर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जायें ।

मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिस्टिबल पहरा देते हैं । तभी तुम बहुत जानते हो । अजो हज़रत, यही चोरी कराते हैं । शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं । रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं, चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो, जागते रहो' पुकारते हैं । जमी इन लोगों के पास इतने रुपये आते हैं । मेरे मामू एक घाने में कानिस्टिबल हैं । बीप रुपये महीना पाते हैं ; लेकिन पचास रुपये घर भेजते हैं । अल्ला क़ुसम । मैंने एक बार पूछा था कि मामू, आप इतने रुपये कहाँ से लाते हैं ? हंसकर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है । फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लायें । हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाय ।

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं तो इन्हें कोई पकड़ता नहीं ?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा ? पकड़नेवाले तो यह लोग खुद हैं ; लेकिन अल्लाह इन्हें सज़ा भी खूब देता है । हराम का माल हराम में जाता है । थोड़े दिन हुए, मामू के घर में आग लग गई । सारी लेई-पूँजी जल गई । एक बरतन तक न

बचा । कई दिन पेड़ के नीचे सोये, अल्लाक़सम, पेड़ के नीचे । फिर न-जाने कहाँ से एक सौ क़र्ज़ लाये तो बरतन-भाँड़े आये ।

हामिद—एक सौ तो पचास से ज़्यादे होते हैं ?

‘कहाँ पचास, कहाँ एक सौ ? पचास एक थैली भर होता है । सौ तो दो थैलियों में भी न आये ।’

अब बस्ती घनी होने लगी थी । ईदगाह जानेवालों की टोलियाँ नज़र आने लगीं । एक-से-एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए । कोई इसके-तांगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग । ग्रामीणों का यह छोटा-सा दल, अपनी विपन्नता से बेख़बर, संतोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था । बच्चों के लिए नगर की सभी चीज़ें अनौखी थीं । जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते । और पीछे से बार-बार हार्न की आवाज़ होने पर भी न चेतते । हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा ।

सहसा ईदगाह नज़र आया । ऊपर इमली के घने वृक्षों का साया है । नीचे पक्का फ़र्श है, जिसपर जाज़िम बिछा हुआ है । और रोज़ेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न-जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्के जगत के नीचे तक, जहाँ जाज़िम भी नहीं है । नये आनेवाले आकर पीछे की क़तार में खड़े हो जाते हैं । आगे जगह नहीं है । यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता । इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं । इन ग्रामीणों ने भी वजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गये । कितना सुंदर संचालन है, कितनी सुंदर व्यवस्था ! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब-के-सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं । कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जायँ, और यही क्रम चलता रहे । कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनंतता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानंद से भर देती थीं, मानों भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोये हुए है ।

(२)

नमाज़ ख़त्म हो गई है । लोग आपस में गले मिल रहे हैं । तब मिठाई

और खिलौनों की दुकानों पर धावा हाता है। ग्रामाणा का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो हिंडोला है। एक पैसा देकर बढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी ज़मीन पर गिरते हुए। यह चख्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छड़ों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मज़ा लो। महमूद और मोह-सेन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई जरा-सा वक़र खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चख्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। उधर दुकानों की क़तार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुज़रिया, राजा और वकील, भिस्ती और धोबिन और साधू। वाह! कितने सुंदर खिलौने हैं! अब बोला ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ावाला, कंधे पर बन्दूक रखे हुए, मालूम होता है अभी क़वा-वद किये चला आ रहा है। मोहसिन को भिस्ती पसन्द आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए है, मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उड़ेलना ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उनके मुख पर, काला चु.ा, नीचे सफ़ेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी की सुनहरी जंजीर, एक हाथ में क़ानून का पोथा लिये हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किये चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं। इतने मँहगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े, तो चूर-चूर हो जाय। ज़रा पानी पड़े तो सारा रंग धुल जाय। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा? किस काम के।

मोहसिन कहता है—मेरा भिस्ती रोज़ पानी दे जायभा, सौभ-सबेरे।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आयेगा, तो फ़ौरन बंदूक फ़ैर कर देगा।

नूरे—और मेरा वकील खूब मुक़दमा लड़ेगा।

सम्मी—और मेरी घोबिन रोज़ कपड़े धोयेगी ।

हामिद खिलौनों की निंदा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकना-चूर हो जायँ, लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि ज़रा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता । उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं; लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक है । हामिद ललचता रह जाता है ।

खिलौनों के बाद मिठाइयाँ आती हैं, किसी ने रेउड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाबजामुन, किसी ने सोहन हलवा । मझे से खा रहे हैं । हामिद उनकी बिरादरी से पृथक् है । अभागे के पास तीन पैसे हैं । क्यों नहीं कुछ लेकर खाता ? ललचाई आँखों से सबकी ओर देखता है ।

मोहसिन कहता है—हामिद, यह रेउड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है !

हामिद को संदेह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है; लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है । मोहसिन दोने से एक रेउड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है । हामिद हाथ फैलाता है । मोहसिन रेउड़ी अपने मुँह में रख लेता है । महमूद, नूर और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं । हामिद खिसिया जाता है ।

मोहसिन—अच्छा अबकी ज़रूर देंगे, हामिद, अल्ला क्रसम ले जाव ।

हामिद—रखे रहो । क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं ?

सम्मी—तीन ही तो पैसे हैं । तीन पैसे में क्या-क्या लोगे ?

महमूद—हमसे गुलाबजामुन ले जाव हामिद ! मोहसिन बदमाश है ।

हामिद—मिठाई कौन बढ़ी नेमत है । किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं ।

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लें । अपने पैसे क्यों नहीं निकालते ?

महमूद—हम समझते हैं इसकी चालाकी । जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जायँगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खायगा ।

मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीज़ों की हैं । कुछ गिलट और नक्ली गहनों की । लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था । वह सब आगे

बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दुकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तब से रोटियाँ उतारती हैं तो हाथ जल जाता है, अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होंगी। फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज़ हो जायगी। खिलौनों से क्या फ़ायदा। व्यर्थ मैं ऐसे खराब होते हैं। ज़रा देर ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौनों को कोई आँख उठाकर नहीं देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जायेंगे, या छोटे बच्चे जो मेले नहीं आये हैं, ज़िद करके ले लेंगे और तोड़ डालेंगे। चिमटा कितने काम की चीज़ है। रोटियाँ तब से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो। कोई आग माँगने आये तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्मा बेचारी को कहीं फुरसत है कि बाज़ार आयें और इतने पैसे ही कहीं मिलते हैं। रोज़ हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गये हैं। सर्वाँल पर सब-के-सब शर्बत पी रहे हैं। देखो सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उसपर कहते हैं, मेरे साथ खेलो, मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने का क़द तो पूछूँगा। खायें मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुन्सियाँ निकलेंगी, आप ही ज़बान चटोरी हो जायगी। तब घर से पैसे चुरायेंगे और मार खायेंगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों खराब होगी। दादी चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा बच्चा दादी के लिए चिमटा लाया है! हज़ारों दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखायेंगी। सारे गाँव में चरचा हाने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौनों पर कौन इन्हें दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरंत सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिज़ाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिज़ाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने और खायें मिठाइयाँ। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिज़ाज क्यों सँढ़ूँ। ग़रीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं आता। आग़िर अब्बा-जान कभी न-कभी आयेंगे। अम्मा भी आयेंगी ही। फिर इन लोगों से

पूछूंगा, कितने खिलौने लगे। एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ। और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेउड़ियाँ लीं तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सब-के-सब खूब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें। मेरी बला से। उसने दूकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है ?

दूकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा—वह तुम्हारे काम का नहीं है जी !

‘बिकाऊ है कि नहीं ?’

‘बिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाये हैं ?’

‘तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है !’

‘लै पैसे लगेंगे ।’

हामिद का दिल बैठ गया ।

‘ठीक-ठीक बताओ ?’

ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो ।’

हामिद ने कलेजा मजबूत करके कहा—तीन पैसे लगे ?

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दूकानदार की चुड़कियाँ न सुने।

लेकिन दूकानदार ने चुड़कियाँ नहीं दीं। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कंधे पर रखा, मानों बंदूक है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। ज़रा सुनूँ, सब-के-सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा—यह चिमटा क्यों लाया पगले। इसे क्या करेगा ?

हामिद ने चिमटे को ज़मीन पर पटककर कहा—ज़रा अपना भिश्ती ज़मीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जायँ बचा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है ?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं। अभी कंधे पर रखा बंदूक हो गई। हाथ में ले लिया, फ़कीरों का चिमटा हो गया। चाहुँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा हूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान

निकल जाय । तुम्हारे खिलौने कितना ही ज़ोर लगायें, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते । मेरा बहादुर शेर है—चिमटा ।

सम्मी ने खँजड़ी ली थी । प्रभावित होकर बोला, मेरी खँजड़ी से पदचोने ? दो आने की है ।

हामिद ने खँजड़ी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे ता तुम्हारी खँजड़ी का पेट फाड़ डाले । बस एक चमड़े की झल्लो लगा दी, ठा-ठब बोलने लगी । ज़रा-सा पानी लग जाय तो खतम हो जाय । मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधो में, तूफान में बराबर डटा खड़ा रहेगा ।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया ; लेकिन अब पैसों की कमी महसूस हो रही है । फिर मेले से दूर निकल आये हैं, नौ कबके बज गये, धूर तेज आ रही है । घर पहुँचने का जल्दी हो रही है । बार से ज़िद भी करें, पानी चिमटा नहीं मिल सकता । हामिद है बड़ा चालाक । इसी लिए बदमाश ने अपने पैसों को बचा रखे थे ।

अब बालकों के दो दल हो गये हैं । मोहसिन, महमूद, सम्मा और नूरे एक तरफ़ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ़ । शास्त्रार्थ हो रहा है । सम्मी तो विधर्मी हो गया । दूसरे पक्ष से जा मिला, लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं । उसके पास न्याय का बल है और नीति का शक्ति । एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है । वह अजेय है, घातक है । अगर कोई शेर आ जाय, तो मियाँ भिंती के छक्के छूट जायँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बंदूक छोड़कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाय, चुगों में मुँह छिपाकर ज़मीन पर लेट नायें । मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रस्तम-हिंद लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँखें निकाल लेगा ।

मोहसिन ने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर कहा—अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता ।

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिंती को एक डाँट बतायेगा, तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा ।

मोहसिन परास्त हो गया ; पर महमूद ने कुमक पहुँचाई—अगर बचा पकड़ जायँ तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे । तब तो वकील साहब ही के पैरो पड़ेंगे ।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका । उसने पूछा—हमें पकड़ने कौन आयेगा ?

नूरे ने अकड़कर कहा—यह सिपाही बंडूकवाला ।

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा—यह बेचारे हम बहादुर रस्तमेहिंद को पकड़ेंगे ! अच्छा, लाओ अभी ज़रा कुरसी हो जाय । इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे ! पकड़ेंगे क्या बेचारे !

मोहसिन का एक नई चोट सूझ गई—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज़ आग में जलेगा ।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा ; लेकिन यह बात नहीं हुई । हामिद ने तुरंत जवाब दिया—आग में बहादुर ही कूदते हैं । ज़नाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिखारी लेडियों की तरह घर में घुस जायँगे । आग में कूदना वह काम है, जो यह रस्तमेहिंद ही कर सकता है ।

महमूद ने एक झोर और लगाया—वकील साहब कुरसी-मेज़ पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावर्चीख़ाने में ज़मीन पर पड़ा रहेगा ।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया । कितने ठिकाने की बात कही है पट्टे ने । चिमटा बावर्चीख़ाने में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है ।

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—मेरा चिमटा बावर्चीख़ाने में नहीं रहेगा । वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हें ज़मीन पर पटक देगा और उनका क़ानून उनके पेट में डाल देगा ।

बात कुछ बनी नहीं । ख़ाली ग़ाली-ग़लौज थी ; लेकिन क़ानून को पेट में डालनेवाली बात छु गई । ऐसी छु गई कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गये, मानों कोई खेलचा कंकौआ किसी गडेवाले कंकौए को काट गया हो । क़ानून मुँह से बाहर निकालनेवाली चीज़ है । उसको पेट के अंदर डाल दिया जाये,

बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैशन मार लिया। उसका चिमटा रूस्तमेहिद है। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी, किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारनेवालों से सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने परसे खर्च किये; पर कोई काम की चीज़ न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा? टूट-फूट जायँगे। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों!

संधि की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा—ज़रा आना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किये।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया। और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आये। कितने खूबसूरत खिलौने हैं।

हामिद ने हारनेवालों के आँसू पाँछे—मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच। यह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बरादरी करेगा; मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से संतोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ न देगा।

महमूद—दुआ को लिये फिरते हो। उलटे मार न पड़े। अम्मा ज़रूर कहेगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले!

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देखकर किसी की माइतनी खुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होगी। तीन पैसे ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल ज़रूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रूस्तमेहिद है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख लगी । उसके बाप ने केले खाने को दिये । महमूद ने केले हामिद को सांझी बनाया । उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गये । यह उस चिमटे का प्रसाद था ।

(३)

ग्याह बजे सारे गाँव में हलचल मच गई । मेलेवाले आ गये । मोहसिन की छोटी बहन ने दौड़कर भिड़ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उल्लास, जो मियाँ भिड़ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे । इसपर भाई-बहन में मार-पीट हुई । दोनों खूब रोये । उनकी अम्मा यह शोर सुनकर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाये ।

मियाँ नूरे ने वकील का अंत उनके प्रतिष्ठानुकूल इससे इशारा गौरवमय हुआ । वकील जमीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता । उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा । दीशर में दो खूँटियाँ गाड़ी गईं । उनपर लकड़ी का एक पट्टा रखा गया । पट्टे पर कागज़ का कालीन बिछाया गया । वकील पाहन राजा भोज की भाँति इस सिंहासन पर विराजे । नूरे ने उन्हें पंखा झुल्लाया । अदालतों में इस की दृष्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं । क्या यहाँ मामूनी पंखा न हो ! कानून की गर्मी दिमाग पर चढ़ जायगी क नहीं । बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगे । मालूम नहीं पंखे को हवा से, या पंखे की चोट से, वकील साहब स्वर्ग-लोक से मर्त्य-लोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया ! फिर बड़े जोर-शोर में मालूम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूँट पर डाल दी गई ।

आरक्ष महमूद का सिपाही । उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण शक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चला । वह पालकी पर चलेगा । एक टोकरी आई, उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिपड़े बिछाये गये, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटें । नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे । उनके दानों छाने भाई सिपाही की तरफ से 'छोने वाले, जागते रहो !' पुकारते चलते हैं । मगर रात तो अंधेरी होनी ही चाहिए । महमूद को ठोकर लग जाती है । टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही

अपनी बंदूक लिये जमीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज्ञा ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिला गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन फानन जोड़ सकता है। केवल गूजर का दूध चाहिए। गूजर का दूध आता है। टाँग जोड़ दी जाती है; लेकिन सिपाही को ज्योंही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे देती है। शल्य-क्रिया असफल हुई, तब उसको दूसरा टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है! एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफ़ा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपांतर चाहो कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब भियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज़ सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सदसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

‘यह चिमटा कहाँ था?’

‘मैंने मोल लिया है।’

‘कैसे मैं?’

‘तीन पैसे दिये।’

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न रिया। लाया क्या यह चिमटा! सारे मेले में तुम्हें और कोई चीज़ न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया!

हामिद ने अपराधी भाव से कहा—‘तुम्हारी उँगलियाँ तब से जल जाती थीं; इसलिए मैंने इसे ले लिया।’

बुढ़िया का क्रोध तुरंत स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग और कितना सद्भाव और कितना विवेक है। दूसरों को खिलौने लेते और

मिठाईयाँ खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा। इतना ज़ब्त इससे दुआ कैसे ! वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चा हामिद ने बूढ़े हामिद का पाट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरती जाती थीं। हामिद इसका रहस्य क्या समझता !

मधुआ

‘आज सात दिन हो गये, पीने की कौन कहे, छुआ तक नहीं ? आज सातवाँ दिन है सरकार !’

‘तुम झूठे हो। अभी तो तुम्हारे कपड़े से महँक आ रही है।’

‘वह...वह तो कई दिन हुए। सात दिन से ऊपर—कई दिन हुए—आँधरे में बोलत उड़ेलने लगा था। कपड़े पर गिर जाने से नशा भी न आया और आपको कहने का...क्या कहूँ...सच मानिए। सात दिन—ठाक सात दिन से एक बूँद भी नहीं।’

ठाकुर सरदारसिंह हँसने लगे। लखनऊ में लड़का पड़ता था। ठाकुर साहब भी कभी-कभी यहाँ आ जाते। उनको कहानी सुनने का चसका था। खोजने पर यही शराबी मिला। वह रात को, दो-दर में, कभी-कभी सवेरे भी आ जाता। अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोविनाद करता।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा—तो आज पोयोगे न ?

‘झूठ कैसे कहूँ। आज तो जितना मिलेगा, सबकी पिऊँगा। सात दिन चने-चबेने पर बताये किस लिए !’

‘अद्भुत ! सात दिन पेट काटकर, आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने की सूझी है ! यह भी...’

‘सरकार ! मौज-बहार की एक घड़ी, एक लंबे दुःख-पूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिये जा सकते हैं।’

‘अच्छा, आज दिन-भर तुमने क्या-क्या किया है ?’

‘मैंने ? अच्छा सुनिए—सबेरे कुहरा पड़ता था, मेरे धुँआँसे कमल-सा वह भी सूर्य के चारों ओर लिपटा था । हम दोनों मुँह छिपाये पड़े थे ।’

ठाकुर साहब ने हँसकर कहा—अच्छा, तो इस मुँह छिपाने का कोई कारण ?

‘सात दिन से एक बूँद भी गले न उतरी थी । भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था ? और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी । उठा, हाथ-मुँह धोने में जो दुख हुआ सरकार, वह क्या कहने की बात है ! पास में पैसे बचे थे । चना चबाने से दाँत भाग रहे थे । कट-कटी लग रही थी । पराठे-वाले के यहाँ पहुँचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सँकता भी रहा । फिर गोमती-किनारे चला गया । घूमते-घूमते अँवरा हो गया, बूँदें पड़ने लगीं । तब कहीं भागा और आपके पास आ गया ।’

‘अच्छा, जो उस दिन तुमने गड़रियेवाली कहानी सुनाई थी, जिसमें आसफुद्दौला ने उसकी लड़की का आँचल, भुने हुए भुटे के दानों के बदले, मोतियों से भर दिया था, वह क्या सच है ?’

‘सच ! अरे वह गरीब लड़की भूख से उसे चबाकर थू थू करने लगी !... रोने लगी । ऐसी निर्दय दिल्लगी बड़े लोग कर ही बैठते हैं । सुना है, श्रीराम-चंद्र ने भी हनुमानजी से ऐसी ही...’

ठाकुर साहब ठठाकर हँसने लगे । पेट पकड़कर हँसते-हँसते लाट गये । साँस बटोरते हुए सम्बलकर बोले—और बड़प्पन कहते किसे हैं ? कंगाल तो कंगाल ! गधी लड़की ! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी । मैं सच कहता हूँ, आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनाईं, सबमें बड़ी टीस थी । शाहजादों के दुखड़े, रंग-महल की अभागिनी बेगमों के निष्फल प्रेम, करुण-कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियाँ ही तुम्हें आती हैं ; पर ऐसी हँसानेवाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने सामने ही बढ़िया शराब पिला सकता हूँ ।

‘सरकार ! बूढ़ों से सुने हुए वे नवाबी के सोने-से दिन ! अमीरों की रँग-रेलियाँ ! दुखियों की दर्द-भरी आँखें ! रंग-महलों में घुल-घुलकर मरनेवाली बेगमों अपने आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं । मैं उनकी पीड़ा से रोने

लगता हूँ । अमीर कंगाल हो जाते हैं । बड़े-बड़े घमंड चूर होकर धूल में मिल जाते हैं । तब भी दुनिया बड़ी पागल है । मैं उसको, पागलपन को भूलने के लिए शराब पीने लगता हूँ—सरकार ! नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता !

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे । अँगोठी में कोयला दहक रहा था । शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था—वह हाथ सँकने लगा । सदसा नींद से चौंकर ठाकुर साहब ने कहा—

अच्छा जाओ, मुझे नींद लग रही है । वह देखो एक रुपया पड़ा है, उठा लो । लल्लू को भेजते जाओ ।

शराबी रुपया उठाकर धीरे से खिसका । लल्लू था ठाकुर साहब का जमादार । उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगलवाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे सुकुमार कंठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा । वह खड़ा होकर सुनने लगा ।

‘तो सूअर ! रोता क्यों है ? कुँअर साहब ने दो ही लात न लगाई है ! कुछ गोली तो नहीं मार दी ?’—कर्कश स्वर से लल्लू बोल रहा था; किंतु उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड़ जाती । अब और भी कठोरता से लल्लू ने कहा—मधुआ ! जा सो रह ! नखरा न कर, नहीं तो उठूँगा तो खाल उधेड़ दूँगा ! समझा न ?

शराबी चुपचाप सुन रहा था । बालक की सिसकी और बढ़ने लगी । फिर उसे सुनाई पड़ा—ले, अब भागता है कि नहीं ! क्यों मार खाने पर तुला है !

भयभीत बालक बाहर चला आ रहा था । शराबी ने उसके छोटे-से सुंदर गोरे मुँह को देखा । आँसू की बूँदें डुलक रही थीं । बड़े दुलार से उसका मुँह पोंछते हुए उसे लेकर वह फाटक के बाहर चला आया । दस बज रहे थे । कड़ाके की सरदी थी । दोनों चुपचाप चलने लगे । शराबी की मौन सहानुभूति को उस छोटे-से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया । वह चुप हो गया । अभी वह एक तंग गली पर रुका था कि बालक के फिर से सिसकने की उसे आहट लगी । वह झिड़ककर बोल उठा—

‘अब क्या रोता है रे छोकरे !’

‘मैंने दिन-भर से कुछ खाया नहीं ।’

‘कुछ खाया नहीं, इतने बड़े अमीर के यहाँ रहता है और दिन भर-तुम्हें खाने को नहीं मिला ?’

‘यही तो मैं कहने गया था ; जमादार के पास। मार तो रोज़ ही खाता हूँ । आज तो खाना ही नहीं मिला । कुँअर साहब का ओवरकोट लिये खेल में दिन भर साथ रहा ! सात बजे लौटा, तो और भी नौ बजै तक कुछ काम करना पड़ा । आटा रख नहीं सका था । रोटी बनती तो कैसे ।’ जमादार से कहने गया था ।—भूख की बात कहते-कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया । वह फिर हिचकियाँ लेने लगा ।

शराबी उसका हाथ पकड़कर घसीटता हुआ गली में ले चला । एक गंदी कोठरी का दरवाजा ढकेलकर बालक को लिये हुए वह भीतर पहुँचा । टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जलाकर वह फटे कम्बज के नाँचे से कुछ खोजने लगा । एक परांठे का टुकड़ा मिला । शराबी उसे बालक के हाथ में देकर बोला—तब तक तू इसे चबा ; मैं तेरा गढ़ा भरने के लिए कुछ और ले आऊँ—सुनता है रे छोकरे ! रोना मत, रोयेगा तू खूब पीढ़ूँगा ! मुझसे राने से बड़ा वैर है । पाजी कहीं का, मुझे भी खजाने का ..

शराबी गली के बाहर भागा । उसके हाथ में एक रुपया था । बारह आने का एक देशी अर्द्धा और दो आने का चॉर...दो आने की पकौड़ी, नहीं-नहीं आलू-मटर...अच्छा, न सही । चारों आने का मांस ही ले लूँगा, पर यह छोकरा ! इसका गढ़ा जो भरना होगा, यह कितना खायगा और क्या खायगा ? ओह ! आज तक तो कभी मैंने दूसरों के खाने का सोच किया ही नहीं । तो क्या ले चलूँ ? पहले-पहल एक अर्द्धा ही ले लूँ !—इतना सोचते-सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी । उसने अपने को मिठाई की दुकान पर खड़ा पाया । वह शराब का अर्द्धा लेना भूतकर मिठाई-पूरी खरीदने लगा । नमकीन लेना भी न भूला । पूरे एक रुपये का सामान लेकर वह दुकान से हटा । जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा । अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने दोनों की पाँत बालक के सामने सजा दी ।

उसकी सुगंध से बालक के गले में एक तरह की तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उँड़ेतते हुए कहा—नटखट कहीं का, हँसता है ! सोंधी बास नाक में पहुँची न ! ले, खूब ठूँसकर खा ले, और रोया कि पिटा !

दोनों ने बहुत दिन पर मिलनेवाले दो मित्रों की तरह साथ बैठकर भर-पेट खाया। सीली जगह में सोते हुए बालक ने शराबी का पुराना बड़ा कोट ओढ़ लिया। जब उसे नींद आ गई, तो शराबी भी कम्बल तानकर बड़बड़ाने लगा—सोचा था, आज सात दिन पर भर-पेट पीकर सोऊँगा ; लेकिन यह छोटो-सा रोना पाजी, न जाने कहाँ से आ धमका !



एक चिंतापूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोलकर, कोठरी में बिखरी हुई दारिद्र्य की विभूति को देखा और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन ही-मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की ! आह री नियति ! तब इसको लेकर मुझे घरबारी बनना पड़ेगा क्या ? दुर्भाग्य ! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी इतनी माया-ममता—जिसपर आज तक केवल बोटल का ही पूरा अधिकार था—इसका पक्ष क्यों लेने लगी ! इस छांटे-से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इंद्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है ? तब क्या करूँ ? कोई काम करूँ ? कैसे दोनों का पेट चलेगा ? नहीं, भगा दूँगा इसे—आँख तो खोले !

बालक अँगड़ाई ले रहा था। उठ बैठा। शराबी ने कहा—ले, उठ, कुछ खा ले। अभी रात का बचा हुआ है, और अपनी राह देख ! तेरा नाम क्या है रे ?

बालक ने सहज हँसी हँसकर कहा—मधुआ। भला हाथ-मुँह भी न धोऊँ, खाने लगूँ ! और जाऊँगा कहाँ ?

‘आह ! कहाँ बताऊँ इसे कि चला जाय ! कह दूँ कि भाड़ में जा ; किन्तु वह आज तक दुःख की भट्ठी में जलता ही तो रहा है। तो...’ वह

चुपचाप घर से झुल्लाकर सोचता हुआ निकला—ले पाजी, अब यहाँ लौटूँगा ही नहीं। तू ही इस कोठरी में रह !

शराबी घर से निकला। गोमती-किनारे पहुँचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बातें सोचता आ रहा था ; पर कुछ भी सोच न सका। हाथ-मुँह धोने में लगा। उजली हुई धूप निकल आई थी। वह चुपचाप गोमती की धारा को देख रहा था। धूप की गरमो से सुखी होकर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था, कि किसी ने पुकारा—

‘भले आदमी, रहे कहाँ ! सालों पर दिखाई पड़े। तुमको खोजते-खोजते मैं थक गया।’

शराबी ने चौंकर देखा। वह कोई जान-पहचान का तो मालूम होता था ; पर कौन है, यह ठीक-ठीक नहीं जान सका।

उसने फिर कहा—तुम्हों से कह रहे हैं। सुनते हो, उठा ले जाओ अपनी सान धरने की कल, नहीं तो सड़क पर फेंक दूँगा। एक ही तो कोठरी, जिसका मैं दो रुपये किराया देता हूँ, उसमें क्या मुझे अपना कुछ रखने के लिए नहीं है ?

‘ओ हो ! रामजी, तुम हो भाई, मैं भूल गया था। तो चलो आज ही उसे उठा लाता हूँ।’ कहते हुए शराबी ने सोचा—अच्छी रही, उसी को बेचकर कुछ दिनों तक काम चलेगा।

गोमती नहाकर, रामजी उसका साथी, पास ही अपने घर पर पहुँचा। शराबी को कल देते हुए उसने कहा—ले जाओ, किसी तरह मेरा इससे पिण्ड छूटे।

बहुत दिनों पर आज उसको कल ढोना पड़ा। किसी तरह अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है। बड़बड़ाते हुए उसने पूछा—क्यों रे, तूने कुछ खा लिया कि नहीं ?

‘भर पेट खा चुका हूँ और वह देखो तुम्हारे लिए भी रख दिया है।’—कहकर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस रूखी कोठरी को तर कर दिया। शराबी एक क्षण-भर चुप रहा। फिर चुपचाप जलपान करने लगा। मन-ही-मन सोच रहा था—यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है ?

चलूँ, फिर लेकर सान देने का काम चलता कलूँ । दोनों का पेट भरेगा । वही पुराना चरखा फिर सिर पड़ा । नहीं तो, दो बार्ते किस्सा-कहानी इधर-उधर की कहकर, अपना काम चला ही लेता था । पर अब तो बिना कुछ किये घर नहीं चलने का । जल पीकर बोला—क्यों रे मधुआ, अब तू कहाँ जायगा ?

‘कहीं नहीं ।’

‘यह लो, तो फिर क्या यहाँ जमा गड़ी है, कि मैं खोद-खोदकर तुम्हें मिठाई खिलाता रहूँगा ?’

‘तब कोई काम करना चाहिए ।’

‘करेगा ?’

‘जो कहो !’

‘अच्छा, तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पड़ेगा । यह कल तेरे लिए लाया हूँ । चल, आज से तुम्हें सान सिखाऊँगा । कहाँ रहूँगा, इसका कुछ ठीक नहीं । पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न ?’

‘कहीं भी रह सकूँगा ; पर ठाकुर की नौकरी न कर सकूँगा !’

शराबी ने एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा । बालक की आँखें दृढ़ निश्चय की सौगंध खा रही थीं ।

शराबी ने मन-ही मन कहा—बैठे-बैठाये यह हत्या कहाँ से लगी ! अब तो शराब न पीने की मुझे भी सौगंध लेनी पड़ी ।

वह साथ ले जानेवाली वस्तुओं को बटोरने लगा । एक गट्ठर का और दूसरा कल का, दो बोझ हुए ।

शराबी ने पूछा—तू किसे उठायेगा ?

‘जिसे कहो ।’

‘अच्छा, तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो ?’

‘कोई नहीं पकड़ेगा, चलो भी । मेरे बाप मर गये-!’

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठाकर खड़ा हो गया । बालक ने गठरी लादी । दोनों कोठरी छोड़कर चल पड़े ।

इक्केवाला

स्टेशन के बाहर आकर मैंने अपने साथी मनोहरलाल से कहा—कोई इक्का मिल जाय, तो अच्छा है—दस मील का रास्ता है।

मनोहरलाल बोले—आइए, इक्के बहुत हैं। उस तरफ़ खड़े होते हैं।

हम दोनों चले। लगभग दो सौ गज चलने के पश्चात् देखा, तो सामने एक बड़े वृक्ष के नीचे तीन-चार इक्के खड़े दिखाई दिये। एक इक्का अभी आया था और उसपर से दो आदमी अपना असबाब उतार रहे थे। मनोहरलाल ने पुकारा—कोई इक्का गंगापुर चलेगा ?

एक इक्केवाला बोला—आइए सरकार, मैं ले चलूँ। कै सवारी हैं ?

‘दो सवारी—गंगापुर का क्या लोगे ?’

‘जो सब देते हैं, वही आप भी दे दीजिएगा !’

‘आखिर कुछ मालूम तो हो ?’

‘दो रुपये का निरख (निख) है।’

‘दो रुपये ?—इतना अधेर !’

इसी समय जो लोग अभी आये थे, उनमें और उनके इक्केवाले में झगड़ा होने लगा। इक्केवाला बोला—यह अच्छी रद्दी, वहाँ से डेढ़ रुपया तय हुआ, अब यहाँ बीस ही आने दिखाते हैं !

यात्रियों में से एक बोला—हमने पहले ही कह दिया था कि हम बीस आने से एक पैसा अधिक न देंगे।

‘मैंने भी तो कहा था, कि डेढ़ रुपये से एक पैसा कम न लूँगा।’

‘कहा होगा, हमने तो सुना नहीं !’

‘हाँ, सुना नहीं—ऐसी बात आप काहे को सुनेंगे !’

‘अच्छा तुम्हें बीस आने मिलेंगे—लेना हो तो लो, नहीं अपना रास्ता देखो।’

इक्केवाला, जो दृष्ट-पुष्ट तथा गौरवर्ण था, अकड़ गया। बोला—रास्ता देखें, कोई अधेर है ! ऐसे रास्ता देखने लगें, तो बस कमाई कर चुके। बायें

हाथ से इधर डेढ़ रुपया रख दीजिए, तब आगे बढ़िएगा। वहाँ तो बोले, अच्छा जो तुम्हारा रेट होगा, वह देंगे, अब यहाँ कहते हैं, रास्ता देखो—अच्छे मिले !

हम लोग यह कथोपकथन सुनकर इक्का करना भूल गये और उनकी बातें सुनने लगे। एक यात्री बड़ी गंभीरतापूर्वक बोला—देखो जी, यदि तुम भलमनसी से बातें करो, तो दो-चार पैसे हम अधिक दे सकते हैं, तुम गरीब आदमी हो ; लेकिन जो झगड़ा करोगे तो एक पैसा न मिलेगा।

इक्केवाला किंचित् मुस्कराकर बोला—दो-चार पैसे ! ओफ़ ओह ! आप तो बड़े दाता मालूम होते हैं ! जब चार पैसे देते हो, तो चार आने ही क्यों नहीं दे देते ?

‘चार आने हमारे पास नहीं हैं।’

‘नहीं हैं—अच्छी बात है, तो जो आपके पास हो वही दे दीजिए—न हो न दीजिए और ज़रूरत हो तो एकाध रुपया मैं आपको दे सकता हूँ।’

‘तुम बेचारे क्या दोगे, चार-चार पैसे के लिए तो तुम झूठ बोलते हो और बेईमानी करते हो।’

‘अरे बाबूजी, लाखों रुपये के लिए तो मैंने बेईमानी की नहीं—चार पैसे के लिए बेईमानी कल्लंगा ? बेईमानी करता तो इस समय इक्का न हाँकता होता। ख़ैर आपको जो देना हो दे दीजिए—नहीं जाइए—मैंने किराया भर पाया।’

उन्होंने बीस आने निकालकर दिये। इक्केवाले ने चुपचाप ले लिये।

उस इक्केवाले का आकार-प्रकार, उसकी बातचीत से मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्य इक्केवालों की तरह यह साधारण आदमी नहीं है। इसमें कुछ विशेषता अवश्य है ; अतएव मैंने सोचा कि यदि हो सके, तो गंगापुर इसी इक्के पर चलना चाहिए। यह सोचकर मैंने उससे पूछा—क्यों भाई, गंगापुर चलोगे ?

वह बोला—हाँ ! हाँ ! आइए !

‘क्या लोगे !’

‘वही डेढ़ रुपया !’

मैंने सोचा, अन्य इक्केवाले तो दो रुपये माँगते थे, यह डेढ़ रुपया कहता

है, आदमी सच्चा मालूम होता है। यह सोचकर मैंने कहा—अच्छी बात है, चलो डेढ़ रुपया दोगे।

हम दोनों सवार होकर चले। थोड़ी दूर चलने पर मैंने पूछा—वे दोनों कौन थे ? इक्केवाले ने कहा—नारायण जाने कौन थे ? परदेशी मालूम होते हैं ; लेकिन परले-सिरे के झूठे और बेईमान ! चार आने के लिए प्राण तजे दे रहे थे।

मैंने पूछा—तो सचमुच तुमसे डेढ़ रुपया ही तय हुआ था !

‘और नहीं क्या आप झूठ समझते हैं ? बाबूजी, यह पेशा ही बदनाम है, आपका कोई कसूर नहीं। इक्के, टांगेवाले सदा झूठे और बेईमान समझे जाते हैं। और होते भी हैं—अधिकतर तो ऐसे ही होते हैं। इन्हें चाहे आप रुपये की जगह सवा रुपया दीजिए, तब भी संतुष्ट नहीं होते।’

मैंने पूछा—तुम कौन जाति हो ?

‘मैं ! मैं तो सरकार वैश्य हूँ।’

‘अच्छा ! वैश्य होकर इक्का हाँकते हो !’

‘क्यों सरकार, इक्का हाँकना कोई बुरा काम तो है नहीं ?’

‘नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है कि इक्का हाँकना कोई बुरा काम है।

मैंने इसलिए कहा कि वैश्य तो बहुधा व्यापार करते हैं।

‘यह भी तो व्यापार ही है।’

‘हाँ, है तो व्यापार ही।’

मैं मन-ही-मन अपनी इस बेतुकी बात पर लज्जित हुआ ; अतएव मैंने प्रसंग बदने के लिए पूछा—कितने दिनों से यह काम करते हो ?

‘दो बरस हो गये।’

‘इसके पहले क्या करते थे ?’

यह सुनकर इक्केवाला गंभीर होकर बोला—क्या बताऊँ, क्या करता था।

उसकी इस बात से तथा यात्रियों से उसने जो बातें कही थीं, उनका तारतम्य मिलाकर मैंने सोचा—इस व्यक्ति का जीवन रहस्यमय मालूम होता है। यह सोचकर मैंने उससे पूछा—कोई हर्ज न समझो तो बताओ।

‘हर्ज तो कोई नहीं है बाबूजी ! पर मेरी बात पर लोगों को विश्वास नहीं

होता । इक्केवाले बहुधा परले-सिरे के गप्पी समझे जाते हैं ; इसलिए मैं किसी को अपना हाल सुनाता नहीं ।’

‘खैर, मैं उन आदमियों में नहीं हूँ, यह तुम विश्वास रखो ।’

‘अच्छी बात है सुनिए—

(२)

मैं अगरवाला बनिया हूँ । मेरा नाम श्यामलाल है । मेरा जन्मस्थान मैनपुरी है । मेरे पिता व्यापार करते थे । जिस समय मेरे पिता की मृत्यु हुई, उस समय मेरी उम्र पन्द्रह साल की थी । पिता के मरने पर घर-गृहस्थी का सारा भार मेरे ऊपर पड़ा । मैंने एक वर्ष तक काम-काज चलाया ; पर मुझे व्यापार का अनुभव न था, इस कारण घाटा हुआ और मेरा सब काम बिगड़ गया । अन्त को और कोई उपाय न देख मैंने वहाँ एक धनी आदमी के यहाँ नौकरी कर ली । उस समय मेरे परिवार में मेरी माता और एक छोटी बहन थी । जिसके यहाँ मैंने नौकरी की थी, वह तो थे मालदार ; परन्तु बड़े कंजूस थे । ऊपर से देखने में वह एक मामूली हैसियत के आदमी दिखाई पड़ते थे ; परन्तु लोग कहते थे कि उनके पास एक लाख के लगभग नक़द रुपया है । उस समय मैंने लोगों की बात पर विश्वास नहीं किया था : क्योंकि घर की हालत देखने से किसी को यह विश्वास नहीं हो सकता था कि उनके पास इतना रुपया होगा । उनकी उम्र चालीस से ऊपर थी । उन्होंने दूसरी शादी की थी और उनकी पत्नी की उम्र बीस वर्ष के लगभग थी । पहली स्त्री से उनके एक लड़का था । वह जवान था और उसका विवाह इत्यादि सब हो चुका था । उसका नाम शिवचरणलाल था । पहले तो वह अपने पिता के पास ही रहता था ; परन्तु जब पिता ने दूसरा विवाह किया, तो वह नाराज़ होकर अपनी स्त्री सहित फ़र्रुखाबाद चला गया । वहाँ उसने एक दूकान कर ली और वहीं रहने लगा ।

‘उन दिनों मुझे कसरत करने का बड़ा शौक था , इसलिए मेरा बदन बहुत अच्छा बना हुआ था । कुछ दिनों पश्चात् मेरी मालकिन मेरी बहुत खातिर करने लगी । खूब मेवा-मिठाई खिलाती थी और महीने में दस-बीस रुपये नक़द दे देती थी । इस कारण दिन बड़ी अच्छी तरह कटने लगे । मैं मालकिन के

खातिर करने का असली मतलब उस समय नहीं समझा। मैंने जो समझा, वह यह था, कि मेरी सेवा से प्रसन्न होकर तथा मुझे गरीब समझकर वह ऐसा करती हैं। आखिर जब एक दिन उन्होंने मुझे एकांत में बुलाकर छेड़-छाड़ की, तब मेरी आँखें खुलीं। मुझे आरंभ से ही इन कामों से नज़रत था। मैं इन बातों को जानता भी नहीं था। न कभी ऐसी संगति ही में रहा था, जिसमें इन बातों का ज्ञान प्राप्त होता। मैं उस समय जो जानता था वह यह था, कि आदमी को खूब कसरत करना चाहिए और स्त्रियों से बचना चाहिए। जब मालकिन ने छेड़-छाड़ की, तो मुझे उनके प्रति अनुराग उत्पन्न होने के बदले भय मालूम हुआ। मेरा कलेजा धड़कने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ, कि वह एक चुड़ैल है और मुझे भक्षण करना चाहती है।'

इक्केवाले की इस बात पर मेरे साथी मनोहरलाल बहुत हँसे। बोले—
तुम तो बिल्कुल बुद्धू थे जी !

श्यामलाल बोला— अब जो समझिए ; परंतु बात ऐसी हो थी। खैर, मैं अपना हाथ छुड़ाकर उनके सामने से भाग आया। अब मुझे उनके सामने जाते डर मालूम होने लगा। यही खटका लगा रहता था, कि कहीं किसी दिन फिर न पकड़ लें। तीन-चार दिन के बाद वही हुआ। उन्होंने अबसर पाकर फिर मुझे घेरा। उस दिन मैंने उनसे साफ़-साफ़ कह दिया, कि यदि वह ऐसी हरकत करेंगी, तो मैं मालिक से कह दूँगा। बस, उसी दिन से मेरी खातिर बंद हो गई। केवल खातिर बंद रह जाती, वहाँ तक गनीमत थी ; परंतु अब उन्होंने मुझे तंग करना आरंभ किया। बात-बात पर डाँटती थीं। कभी मालिक से शिकायत कर देती थीं। आखिर जब एक दिन मालिक ने मुझे मालकिन के कहने से बहुत डाँटा, तो मैंने उन्हें अलग ले जाकर कहा—लालाजी, मेरा हिसाब कर दीजिए, मैं अब आपके यहाँ नौकरी नहीं करूँगा। लालाजी लाल-पीली आँखें करके बोले—एक तो क्रूर करता है और उसपर हिसाब माँगता है ? मुझे भी तेरा आ गया। मैंने कहा—क्रूर किस ससुरे ने किया है ? लालाजी बोले—तो क्या मालकिन झूठ कहती हैं ? मैंने कहा—बिल्कुल झूठ ! लालाजी ने कहा—तेरे से उनकी शत्रुता है क्या ? मैंने कहा—हाँ, शत्रुता है। उन्होंने पूछा—क्यों ? मैंने कहा—अब आपसे क्या बताऊँ। आप उसे

भी झूठ मानेंगे। इसलिए सबसे अच्छी बात यही है, कि मेरा हिसाब कर दीजिए। मेरी बात सुनकर लाला के पेट में खलबली मची। उन्होंने कहा—पहले यह बता, कि बात क्या है? मैंने कहा—उसके कहने से कोई फायदा नहीं, आप मेरा हिसाब दे दीजिए। परंतु लाला मेरे पांछे पड़ गये। मैंने विवश होकर सब हाल बता दिया। मुझे भय था, कि लाला को मेरी बात पर विश्वास न होगा; पर ऐसा नहीं हुआ। लाला ने मेरी पीठ पर हाथ फेरकर कहा—शाबाश श्यामलाल, मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम आनंद से रहो, तुम्हारी तरफ कोई आँख उठाकर नहीं देख सकेगा। बस उस दिन से मैं निर्द्वन्द्व हो गया। अब अधिकतर मैं मालिक के पास बाहर ही रहने लगा, भीतर कम जाता था। उसके पश्चात् भी मालकिन ने मेरे निकलवाने के लिए चेष्टा की; पर लाला ने उनकी एक न सुनी। आखिर वह भी हारकर बैठ रही।

‘इस प्रकार एक वर्ष और बीता। इस बीच में लाला के एक रिश्तेदार—जो उनके चचेरे भाई होते थे—बहुत आने-जाने लगे। उनकी उम्र पच्चीस-छब्बीस वर्ष के लगभग होगी। शरीर के मोटे-ताज़े और तंदुरुस्त आदमी थे। पहले तो मुझे उनका आना-जाना कुछ नहीं खटका; पर जब उनका आना-जाना हृदय से अधिक बढ़ गया और मैंने देखा, कि वह मालकिन के पास घण्टों बैठे रहते हैं, तो मुझे सदेह हुआ, कि हो-न-हो दाल में कुछ काला अवश्य है। लालाजी अधिकतर दूकान में रहने के कारण यह बात न जानते थे। घर का कहार भी मालकिन से मिला हुआ मालूम होता था; इसलिए वह भी चुप्पी साधे था। एक मैं ही ऐसा था, जिसके द्वारा लाला को यह खबर मिल सकती थी। अतः मैंने इस रहस्य का पता लगाने पर कमर बांधी और एक दिन अपनी आँखों उनकी पापमयी लीला देखी। बस उसी दिन मैंने लाला को खबर कर दी। लाला उस बात को चुपचाप पी गये। आठ-दस रोज़ बाद लाला ने मुझे बुलाकर कहा—श्यामलाल, तेरी बात ठीक निकली, आज मैंने भी देखा। जिस दिन तूने कहा था, उसी दिन से मैं इसकी टोह में था—आज तेरी बात की सत्यता प्रमाणित हो गई। अब बता, क्या करना चाहिए? मैंने कहा—मैं क्या बताऊँ, आप जो उचित समझें, करें। लाला ने पूछा—तेरी क्या राय है? मैंने इस उम्र में विवाह करके बड़ी भूल

की ; पर अब इसका उपाय क्या है ? मैंने कहा—अपने भाई साहब का आना-जाना बंद कर दीजिए, यही उपाय है और हो ही क्या सकता है ? लाला ने सोचकर कहा—हाँ, यही ठीक है । जी में तो आता है कि इस ओरत को निकाल बाहर करूँ ; पर इसमें बड़ी बदनामी होगी । लोग हँसेंगे कि पहले तो विवाह किया, फिर निकाल दिया ।

मैंने कहा—हाँ, यह तो आपका कहना ठीक है । बस, उनका आना-जाना बन्द कर दीजिए ; अतएव उसी दिन से यह हुकुम लग गया, कि लाला की अनुपस्थिति में बाहर का कोई आदमी—चाहे रिश्तेदार हो, चाहे कोई हो—अंदर न जाने पाये । और यह काम मेरे सुपुर्द किया गया । उस दिन से मैंने उन्हें नहीं घँसने दिया । इसरर उन्होंने मुझे प्रलोभन भी दिये, धमकी भी दी ; पर मैंने एक न सुनी । मालकिन ने भी बहुत कुछ कहा-सुना, खुशामद की ; पर मैं ज़रा भी न पसीजा । कहरवा भी बोला—तुमसे क्या मतलब है ; जो होता है, होने दो । मैंने उससे कहा—सुनता है बे, तू तो पक्का नमकहराम है, जिसका नमक खाता है, उसी के साथ दगा करता है । खैरियत इसी में है कि चुप रह, नहीं तो तुझे भी निकाल बाहर करूँगा ।

यह सुनकर कदारराम चुप हो गये ।

थोड़े दिन बाद लाला के उन रिश्तेदार ने आना-जाना बिल्कुल बंद कर दिया । अब वह लाला के पास भी नहीं आते थे । मैंने भी सोचा, चलो अच्छा हुआ, आँख फूटी पीर गई ।

‘इसके छः महीने बाद एक दिन लाला को हैज़ा हो गया । मैंने बहुत दौड़-धूप की, इलाज इत्यादि कराया ; पर कोई फ़ायदा न हुआ । लालाजी समझ गये कि अन्त समय निकट है ; अतएव उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—श्यामलाल, मैं तुझे अपना नौकर नहीं, पुत्र समझता हूँ ; इसलिए मैं अपनी कोठरी की ताली तुम्हें देता हूँ । मेरे मरने पर ताली मेरे लड़के को दे देना और जब तक वह न आ जाय, तब तक किसी को कोठरी न खोलने देना । बस, तुम्हसे मैं इतनी अंतिम सेवा चाहता हूँ ।’

मैंने कहा—ऐसा ही होगा, चाहे मेरे प्राण ही क्यों न चले जायँ ; पर मैं इसमें अन्तर न पड़ने दूँगा । इसके पश्चात् उन्होंने मुझे पाँच हजार रुपये

नक़द दिये और बोले—यह लो, मैं तुम्हें देता हूँ। मैं लेता न था ; पर उन्होंने कहा—तू यदि न लेगा, तो मुझे दुःख होगा, अतएव मैंने ले लिए। इसके चार घंटे बाद उनका देहान्त हो गया। उनके लड़के को उनके मरने के तीन घंटे पहले तार दे दिया गया था। उनके मरने के पाँच घंटे बाद वह मैनपुरी पहुँचा था। उनका देहान्त रात को आठ बजे हुआ और वह रात के दो बजे के निकट पहुँचा था। लाला के मरने के बाद उनकी स्त्री ने मुझसे कहा—कोठरी की ताली लाओ। मैंने कहा—ताली तो लाला शिवचरणलाल के हाथ में देने का कह गये हैं, मैं उन्हीं को दूँगा। उन्होंने कहा—अरे मूर्ख, इससे तुझे क्या मिलेगा। कोठरी खोलकर रुपया निकाल ले—मुझे मत दे, तू ले ले, मैं भी तेरे साथ रहूँगी, जहाँ तू ले चलेगा, तेरे साथ चलूँगी। मैंने कहा—यह मुझसे न होगा। मैं तुम्हें ले जाकर रखूँगा कहाँ ? दूसरे तुम मेरे उस मालिक की स्त्री हो, जो मुझे अपने पुत्र के समान मानता था। मुझसे यह न होगा, कि तुम्हें अपनी स्त्री बनाकर रखूँ।

‘बाबूजी, एक घंटे तक उसने मुझे समझाया, रोई भी, हाथ भी जोड़े ; परन्तु मैंने एक न मानो। आखिर उसने अन्य उपाय न देख अपने देवर, अर्थात् उन्हीं को बुलवाया, जिनका आना-जाना मैंने बंद कराया था। उन्होंने आते ही बड़ा रुआव भाड़ा। मुझे पुलिस में देने की धमकी दी ; पर मैं इससे भयभीत न हुआ। तब वह ताला तोड़ने पर आमादा हुए। मैं कोठरी के द्वार पर एक छोटा डंडा लेकर बैठ गया और मैंने उनसे कह दिया कि जो कोई ताला तोड़ने आयेगा, पहले मैं उसका फिर ताड़ूँगा, इसके बाद जो होगा देखा जायगा। बस फिर उनका साहस न हुआ। इस रगड़े-भगड़े में रात के दो बज गये और शिवचरणलाल आ गये। मैंने उनकी ताली दे दी और सब हाल बता दिया।

‘बाबूजी, जब कोठरी खोली गई, तो उसमें साठ हजार रुपये नक़द निकले। इन रुपयों का हाल लाला के अतिरिक्त और किसी को भी मालूम न था। यदि मैं मालकिन की बात मानकर बीस-पच्चीस हजार रुपये भी निकाल लेता, तो किसी को भी संदेह न होता ; पर मेरे मन में इस बात का विचार एक क्षण के लिए भी पैदा न हुआ। मेरी मा रोज़ रामायण पढ़कर मुझे

सुनाया करती थी, और मुझे यही समझाया करती थी कि—बेटा, पाप और बेईमानी से सदा बचना, इससे तुझे कभी दुःख न होगा। उनकी यह बात मेरे जेब में बसी हुई थी और इसी लिए मैं बच गया। उसके बाद शिवचरण-लाल ने भी मुझे एक हज़ार रुपया दिया। साथ ही उन्होंने यह कहा कि तुम मेरे पास रहो; पर लाला के मरने से और जो अनुभव मुझे हुए थे, उनके कारण मैंने उनके यहाँ रहना उचित न समझा। लाला की तेरही होने के बाद मैंने उनकी नौकरी छोड़ दी। छः हजार रुपये में से दो हजार मैंने अपनी बहन के ब्याह में खर्च किये और दो हजार अपने ब्याह में खर्च किये। एक हज़ार लगाकर एक दूकान को और हज़ार बचाकर रखा; पर दुकान में फिर घाटा हुआ। तब मैंने मैदपुरी छोड़ दी और इधर चला आया। नौकरी करने की इच्छा नहीं थी; इसलिए मैंने इक्का-घांड़ा खरीद लिया और किराये पर चलाने लगा—तबसे बराबर यही काम कर रहा हूँ। इसमें मुक्त खाने-भर को मिल जाता है। अपने आनंद से रहता हूँ, न किसी के लेने में हूँ, न देने में। अब बताइए, वह बाबू कहते थे कि चार आने पैसे के लिए मैं बेईमानी करता हूँ। अब मैं उनसे क्या कहता। यह तो दुनिया है, जहाँ जिसकी समझ में आता है, कहता है। मैं भी सब सुन लेता हूँ। इसके ब्यापक इनाम हैं; इसलिए मुझे भी ये बातें सुननी पड़ती हैं।

श्यामलाल की आत्मकथन सुनकर मैं कुछ देर तक स्तब्ध बैठा रहा। इसके पश्चात् मैंने कहा—भाई, तुम तो दर्शनाय आदमी हो, तुम्हारे तो चरण छूने को ज़ा चाहता है।

श्यामलाल हँसकर बोला—अजी बाबूजी, क्यों काँटों में घसीटते हो? मेरे चरण और आप छूयें—राम! राम! मैं कोई साधु थोड़ा ही हूँ।

मैंने कहा—और साधु कैसे होते हैं; उनके कोई सुख का पर तो लगा होता नही। सच्चे साधु तो तुम्हारे हो। यह सुनकर श्यामलाल हँसने लगा। इसी समय गंगापुर आ गया और हम लोग इसके से उतरकर अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर चल दिये।

रास्ते में मैंने मनोहरलाल से कहा—इस संसार में अनेकों लाल गुदड़ी में छिपे पड़े हैं। उन्हें कोई जानता तक नहीं।

मनोहरलाल—जी हाँ ! और नामधारी ढोंगी महात्मा ईश्वर की तरह पूजे जाते हैं ।



बात बहुत पुरानी हो गई है, पता नहीं, महात्मा श्यामलाल अब भी जीवित हैं या नहीं ; परंतु अब भी जब कभी मुझे उनका स्मरण हो आता है, तो मैं उनकी काल्पनिक मूर्ति के चरणों में अपना मस्तक नत कर देता हूँ ।

एथेंस का सत्यार्थी

यह उस बीते हुए युग की कहानी है, जब यूनान ऐश्वर्य और सम्पत्ता के शिखर पर था और संसार की सर्वोत्तम संतान यूनान में उत्पन्न होती थी । रात का समय था । काव्य और कला को कभी न भूलनेवाली प्राचीन नगरी एथेंस पर अंधकार छाया हुआ था । चारों तरफ सन्नाटा था, चारों तरफ निस्तब्धता थी—सब बाज़ार खाली थे, सब गलियाँ निर्जन थीं और यह सुंदर और आबाद नगरी रात के अँधेरे में दूर से इस तरह दिखाई देती थी, जैसे किसी जंगल में धुँधली-सी अपूर्ण छाया का पड़ाव पड़ा हो ।

पूरी नगरी पूरा विश्राम कर रही थी । उसके विद्वान् विलासी बेटे अपनी-अपनी शय्या पर बेसुध पड़े थे । रंग-शालाएँ खाली हो चुकी थीं, विलास-भवनों के दीपक बुझा दिये गये थे और द्वारपालों की आँखों की पलकें नींद के लगातार आक्रमणों के सामने झुकी जाती थीं ; परंतु एक नवयुवक की आँखें नींद की शांति और शांति की नींद दोनों से वंचित थीं ।

यह देवकुलीश एक विद्यार्थी था, जिसकी आत्मा सत्य-दर्शन की प्यासी थी । वह एक बहुत बड़े धनवान् का बेटा था, उस ही सम्पत्ति उसके लिए हर तरह का विलास खरीद सकती थी, वह अत्यंत मनोहर था, यूनान-माता की सबसे सुंदर बेटियाँ उसके प्रेम में पागल हो रही थीं । वह बहुत उच्चकोटि का तत्त्व-वेत्ता था । उसकी साधारण युक्तियाँ भी विद्यालय के अध्यापकों को पहुँच से बाहर थीं ; परंतु उसे इसपर भी शांति न थी । वह सत्यार्थी था । वह सत्य की खोज में अपने-आपको मिटा देने पर तुला हुआ था । वह इस रास्ते में अपना सर्वस्व निछावर कर देने को तैयार था । मर्त्य-लोक की नाशवान्

खुशियाँ उसके लिए अर्थ-हीन वस्तुएँ थीं। यौवन और सौंदर्य की सजीव मूर्तियों में उसके लिए कोई आकर्षण न था। वह चाहता था, किसी तरह सत्य को एक बार उसके वास्तविक रूप में देख ले। वह सत्य को बेपरदा, नंगा देखना चाहता था। ऐसा नहीं जैसा वह दिखाई देता है, बल्कि ऐसा जैसा वह वास्तव में है। वह अपनी इस मनोरथ-सिद्धि के लिए सब कुछ करने को तैयार था।

देवकुलीश रात-दिन पढ़ता था।

पढ़ता था और सोचता था। सोचता था और पढ़ता था ; मगर उसके स्वास्थ्य, चिंतन और मनन में उसके प्यासे हृदय की प्यास मिटती न थी, बढ़ती जाती थी। सत्य का रोगी चिकित्सा से और ज्यादा बीमार होता जाता था।

(२)

विद्यालय के आँगन में विशाल एक ऊँचा चबूतरा था ; जिसपर पता नहीं कबसे मिनरवा, ज्ञान और विवेक की देवी, सगगरमर के वस्त्र पहने खड़ी थी। देवकुलीश पत्थर की इस मूर्ति के वरक-समान पैरों के निकट आकर घंटों बैठा रहता और संसार के रहस्य पर चिंतन किया करता था। यहाँ तक कि उसके मित्रों और सहपाठियों ने समझ लिया कि इसके मास्तिष्क में विकार उत्पन्न हो गया है। वे उसकी इस शोचनीय (?) दशा को देखते थे और कुढ़ते थे।

उस रात भी देवकुलीश देवी के पैरों के निकट बैठा था और रो रहा था—कृपा कर ! ऐ विद्या और विज्ञान की सबसे बड़ी देवी, कृपा कर ! मेरे मन की अभिलाषा पूरी कर। मैं कई वर्षों से तेरी पूजा कर रहा हूँ। मैंने कई रातों तेरे पैरों को अपने आँसुओं से धोने में गुज़ार दी है। मैंने कई दिन केवल तेरे ध्यान में बिता दिये हैं। मेरी प्रार्थना के शब्द सुन और उन्हें स्वीकार कर !

देवकुलीश यह कहकर खड़ा हो गया और देवी के तेज-पूर्ण मुँह को तरफ देखने लगा, मगर वह उसी तरह चुपचाप थी।

इतने में चंद्रमा आकाश में उदय हुआ। उसके सुवर्ण और सुशीतल प्रकाश में देवी की मूर्ति और भी मनोहर दिखाई देने लगी।

अब देवकुलीश फिर मूर्ति के चरणों में बैठा था और फिर उसी तरह बालकों के सदृश रां-रां कर प्रार्थना कर रहा था, मानों वह संगमरमर की मूर्ति न थी, इस दुनिया की जीती-जागती स्त्री थी, जो सुनती भी है, जवाब भी देती है। बुद्धिमान् देवकुलीश ने पागलपन के आवेश में कहा—आज की रात फ़ैसलें का रात है। ऐ ज्ञान और विवेक की रानी ! तूने मेरे दिल में जिज्ञासा की आग सुगाई है, तू ही उसे सत्य के शीतल जल से शांत कर सकती है। सत्य कहाँ है ?—गजर, अमर, अटल सत्य। वह सत्य जिसपर बुद्धिमान् लोग शास्त्रार्थ करते हैं, जिसका पंडित चिंतन करते हैं, जिसे लोग प्रशंसित मतांश करते हैं, भादरों में झूढ़ते हैं, जिसके लिए दूर-दूर भटकते हैं। मैं वह उच्च कोटि का सत्य देखने का अभिलाषी हूँ। नहीं तो मैं चाँद की उज्ज्वल चाँदनी के सामने तेरे पैरों की खोंगध खाकर कड़ता हूँ, कि अपने निरर्थक जीवन को यहीं, इसी जगह समाप्त कर दूँगा। मुझे सत्यहीन जीवन की कोई आवश्यकता नहीं।

यह कहकर देवकुलीश ने अपनी चादर के अंदर से एक कटार निकाली और आत्म-हत्या करने को तैयार हो गया।

एकाएक स्फेद पत्थर की मूर्ति सजीव हो गई। उसने देवकुलीश के हाथ से कटार छीन ली, उसे आँगन के एक अंगरेज काने में फेंक दिया और कहा—देवकुलीश !

देवकुलीश कांपता हुआ खड़ा हो गया और आशा, आनंद और संदेह की दृष्टि से देवी की ओर देखने लगा। क्या यह सच है ?

हाँ, यह सच था ; देवी के होंठ सचमुच हिल रहे थे—देवकुलीश ! देवकुलीश !—देवकुलीश देवी का एक-एक शब्द पूरे ध्यान से सुन रहा था।

‘देवकुलीश ! मौत का मार्ग अँधेरा है। तू मेरा पुजारी, मेरी आँखों के सामने इस भाग पर नहीं जा सकता। मेरे लिए असह्य है कि मेरे सामने कोई आत्म-हत्या कर जाय। बोल, क्या माँगता है ? मैं तेरी हर एक मनोकामना पूरी करने को तैयार हूँ।’

देवकुलीश का दिल सफलता के आनंद से धड़क रहा था। उसके मुँह से शब्द न निकलते थे। वह देवी के पैरों के निकट बैठ गया, और श्रद्धाभाव से

बोला—पवित्र देवी ! मैं सत्य को उसके अपने असली स्वरूप में देखना चाहता हूँ । नंगा, बेपरदा, खुला सत्य । और कुछ नहीं, बस सत्य !

‘तू सत्य को जानना चाहता है ?’—देवी के होठों से आवाज़ आई—
‘तू आप सत्य है । यह आगन भी सत्य है । मैं भी सत्य हूँ । आँखें खोल, सत्य दुनिया के चप्पे-चप्पे में मौजूद है ।’

देवकुलीश—मगर उसपर परदे पड़े हुए हैं ।

देवी—विवेक की आँख उन परदों के अंदर का दृश्य भी देख सकती है ।

देवकुलीश—पवित्र माता ! मैं सत्य को विवेक से नहीं, आँखों से देखना चाहता हूँ । मैं सोचकर नहीं देखना चाहता, देखकर सोचना चाहता हूँ ।

देवी ने अपना पत्थर का सफेद, ठंडा, आरी हाथ देवकुलीश के कंधे पर रख दिया और माँटे स्वर में बोली—बेपरदा, नंगा सत्य आज तक दुनिया के किसी बेटे ने नहीं देखा, न देवताओं ने किसी मनुष्य को यह वरदान दिया है । तू अब का कीड़ा है तेरी आँखों में यह दृश्य देखने की शक्ति कहाँ । मेरा परामर्श है, यह खयाल छोड़ दे और अपने लिए कोई और वस्तु माँग, मैं अभी, इसी जगह दूँगी ।

देवकुलीश—यूनान की सबसे बड़ी देवी ! मैं केवल नंगा सत्य देखना चाहता हूँ और कुछ नहीं चाहता ।

देवी—मगर इसका मूल्य...

देवकुलीश—जो कुछ तू माँगे ।

देवी—धन, दौलत, सौंदर्य यह सब तुझसे छूट जायेंगे । तुझे अपनी दुनिया को चाँद और सूरज के प्रकाश से भी वंचित करना होगा—शायद इस यज्ञ में तुझे अपने जीवन की भी आहुति देनी पड़े । बोल ! क्या अब भी तू सत्य का नंगा रूप देखना चाहता है !

देवकुलीश—मुझे सब कुछ स्वीकार है ।

देवी ने सिर झुका लिया ।

देवकुलीश—परमेश्वर की सृष्टि में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो मैं इसके लिए न त्याग सकूँ ।

देवी ने फिर सिर उठाया और मुस्कराकर कहा—बहुत अच्छा ! तू सत्य

को देख लेगा, तुम्हें सत्य दिखा दिया जायगा, सत्य का वास्तविक, नंगा रूप तेरे सामने होगा ; परन्तु एक बार नहीं, धीरे-धीरे चल ! आज सत्य का एक परदा उठा, बाक़ी एक वर्ष के बाद !

(३)

यह कहते-कहते देवी ने अपनी सफ़ेद पत्थर की चादर उतारकर चबूतरे पर रख दी और देवकुलीश को गोद में उठा लिया । देखते देखते देवी के दोनों कंधों पर परियों के-से दो पर निकल आये । देवी ने पर खोले, और हवा में उड़ने लगी । पहले शहर, मंदिरों के कलश, पर्वत ; फिर चाँद, तारे, बादल सब नीचे रह गये । देवी देवकुलीश को लिये आकाश में उड़ी जा रही थी । थोड़ी देर बाद उसने देवकुलीश को बादलों के एक पहाड़ पर खड़ा कर दिया । देवकुलीश ने देखा, पृथ्वी उसके पाँव तले बहुत दूर, बहुत नीचे एक छोटे-से तारे के समान टिमटिमा रही है, और थी वह यह दुनिया, जिसको वह इतना बड़ा समझ रहा था ; मगर देवकुलीश का ध्यान इस ओर न था । उसने अपने पास छाया में छिपी हुई एक धुँधली-सी चीज़ देखी, और देवी से पूछा—यह क्या है ?

देवी—यही सत्य है । यह छिपकर यहाँ रहता है, यहीं से तेरी और अनगिनत दूसरी दुनियाओं को अपनी दिव्य-ज्योति भेजता है । इसी के धुँधले प्रकाश में बैठकर सयाने लोग दुनिया की पहेलियाँ हल करते हैं, और गुरु अपने शिष्यों को जीवन की शिक्षा देते हैं । यही प्रकाश सृष्टि का सूरज है, यही ज्योति मानव-चरित्र का आदर्श है । तू कहेगा, यह तो कुछ ज्यादा प्रकाशमान नहीं ; परन्तु देवकुलीश ! तेरे शहर के निकट जो नदी बहती है, यदि उसकी सारी रेत का एक-एक कण एक-एक सूरज बन जाय, तब भी उसमें इतना प्रकाश न होगा, जितना इस पहाड़ की छाया में है ; मगर वह परदों में छिपा हुआ है । चल, आगे बढ़ और इसका एक परदा फाड़ दे ।

देवकुलीश ने एक परदा फाड़ दिया । इसके साथ ही उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे संसार में एक नवीन प्रकार का प्रकाश फैल गया है । सच की छाया अब पहले से ज्यादा साफ़ और चमकदार थी । देवी देवकुलीश को

फिर एथेंस में उड़ा लाई और अपनी संगमरमर की चादर ओढ़कर फिर उसी चबूतरे पर उसी तरह चुपचाप खड़ी हो गई।

अब देवकुलीश की दृष्टि में चाँदी और सोने का कोई मूल्य न था। वह लोगों को दौलत के पीछे भागते देखता, तो उसे आश्चर्य होता था। वह चाँदी को सफ़ेद लोहा, और सोने को पीला लोहा कहता था, और इनकी प्राप्ति के लिए अपना परिश्रम नष्ट न करता था। उसे पढ़ने की धुन थी, दिन रात पढ़ता रहता था। उसके बाप ने उसका साधु स्वभाव देख कह दिया, कि इसे मेरी जायदाद में से कुछ न मिलेगा; परंतु देवकुलीश को इसकी ज़रा भी चिंता न थी। उसके मित्र-संबंधी कहते—देवकुलीश! यह आयु जवानी और गर्म खून की है। सफ़ेद बालों और भुकी हुई कमर का ज़माना शुरू होने से पहले पहल कुछ जमा कर ले। नहीं फिर बाद में पछतायेगा।

देवकुलीश उनकी तरफ़ अद्भुत दृष्टि से देखता और कहता—तुम क्या कह रहे हो, मैं कुछ नहीं समझा।

एथेंस के एक बहुत अमीर की कुँआरी बेटी अब भी देवकुलीश की मांटा-मोटी काली आँखों की दीवानी थी। वह देवकुलीश की इस दीन दशा को देखती और कुढ़ती थी। देवकुलीश के खाने-पीने का प्रबंध भी वही करती थी, वरना वह भूखा-प्यासा मर जाता।

इसी तरह एक साल के तीन सौ पैंसठ दिन पूरे हो गये। रात का समय था, एथेंस पर फिर अंधकारपूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था। देवकुलीश ने फिर देवी के पैरों पर सिर झुकाया। देवी उसे फिर बादलों के पहाड़ पर ले गई और देवकुलीश ने सत्य का दूसरा परदा फाड़ दिया। इस बार सत्य का प्रकाश और भी साफ़ हो गया। देवकुलीश ने उसे देखा और उसकी आँखों को वह ज्ञानचक्षु मिल गये, जो यौवन और सुकुमारता के लाल लहू के पीछे छिपे हुए बुढ़ापे की एक-एक झुर्री को देख सकते हैं। फिर वह अपनी बनावट और अविद्या की दुनिया को वापस चला आया। देवी फिर संगमरमर का बुत बनकर अपनी जगह पर खड़ी हो गई।

(४)

एक दिन उसके मित्र ने कहा—देवकुलीश! आज यूनान की सब

कुँ आरी लड़कियाँ एथेंस में जमा हैं और आज यूनान की सबसे सुंदरी युवती को सौंदर्य का पहला इनाम दिया जायगा । क्या तू भी चलेगा ?

देवकुलीश ने उसकी ओर मुस्कराकर देखा और कहा—सत्य वहाँ नहीं है ।

दूसरे दिन एक अध्यापक ने कहा—आज यूनान के सारे समझदार लोग विद्यालय में जमा हैं । क्या तुम उनसे मिलोगे ?

देवकुलीश ने ठंडी आह भरकर जवाब दिया—सत्य वहाँ भी नहीं है ।

तीसरे दिन एक महंत ने कहा—आज चाँददेवी के बड़े मंदिर में देवताओं की पूजा होगी । क्या तुम भी आओगे ?

देवकुलीश ने लंबी आह खींची और कहा—सत्य वहाँ भी नहीं है ।

और इस तरह इस सत्यार्थी ने जवानी ही में जवानी के सारे प्रलाभनों पर विजय प्राप्त कर ली । अब वह पूरा महंत था ; मगर वह एथेंस के किसी मेले में नज़र न आता था, उसकी आवाज़ किसी सभा में न सुनाई देती थी ।

सत्यार्थी साल-भर एकांत में पढ़ता रहता और इसके बाद बादलों के पहाड़ पर जाकर सत्य का एक परदा फाड़ आता था । इसी तरह कई वर्ष बीत गये । उसका ज्ञान दिन-पर-दिन बढ़ता गया ; मगर उसकी आँखें अंदर घँस गई थीं, कमर झुक चुकी थी, सिर के सारे बाल सफ़ेद हो गये थे । उसने सत्य की खोज में अपनी जवानी बुढ़ापे की भेंट कर दी थी ; मगर उसे इसका दुःख न था, क्योंकि वह जवानी और बुढ़ापे दोनों की सत्ता से परिचित हो चुका था ।

और लोग यह समझते थे कि देवकुलीश ने अपने लिए अपनी कोठरी को समाधि बना लिया है ।

(५)

आखिर वह प्यारी रात आ गई, जिसकी प्रतीक्षा में देवकुलीश को अपने जीवन का एक-एक क्षण एक-एक वर्ष, एक-एक शताब्दी से भी लंबा मालूम होता था ।

आज सत्य के मुँह से अंतिम परदा उठेगा । आज वह सत्य को नंगा,

बे-परदा देखेगा, जिसे संसार के किली नश्वर बेटे ने आज तक नहीं देखा। आज उसके जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी हो जायगी।

आधी रात को उसे विवेक और विज्ञान की देवी ने अंतिम चार गोद में उठाया, और बादलों के पहाड़ पर ले जाकर खड़ा कर दिया।

देवकुलीश ने सत्य की ओर अधीर होकर देखा।

देवी ने कहा—देवकुलीश ! देख, इसका प्रकाश कैसा साफ़, कैसा तेज़ है। आज तक तूने इसके जितने परदे उतारे हैं, वे इसके परदे न थे, तेरी बुद्धि के परदे थे। सत्य का एक ही परदा है, आगे बढ़ और उसे उतार दे ; परंतु अगर तू चाहे, तो अब भी लौट चल। मैं तुम्हें सार्थ समुद्रों के मोती और दुनिया का सारा सोना देने को तैयार हूँ। तेरा गया हुआ स्वास्थ्य वापस मिल सकता है, तेरा उजड़ा हुआ जीवन लौटाया जा सकता है। मुझमें कह, तेरे सिर के सफ़ेद बालों को छूकर फिर से काला कर दूँ। देवकुलीश ! अब भी समय है, अपना संकल्प त्याग दे।

मगर बहादुर सत्यार्थी ने देवी का कहना न माना, और आगे बढ़ा। उसका कलेजा धड़क रहा था, उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे, उसके हाथ काँप रहे थे, उसका सिर चकरा रहा था ; मगर वह फिर भी आगे बढ़ा। उसने अपनी आत्मा और शरीर की सारी शक्तियाँ हाथों में जमा कीं और उन्हें फैलाकर सत्य का अंतिम परदा फाड़ दिया।

ओ परमात्मा !

चारों ओर अंधकार छा गया था ; ऐसा भयानक अंधकार, जैसा इससे पूर्व देवकुलीश ने कभी न देखा था। उसने चिल्लाकर कहा—देवी माता ! यह क्या हो गया ? मुझे कुछ दिखाई नहीं देता ; वह जो परदे के पीछे था, कहाँ चला गया ?

देवी ने मधुर स्वर से कहा—देवकुलीश ! देवकुलीश !!

देवकुलीश ने आँधरे में टटोलते हुए कहा—देवी ! मुझे बता, वह कहाँ है ? मैं कहाँ हूँ, तू कहाँ है ?

देवी ने अपना हाथ धीरे से उसके कंधे पर रखा और जवाब दिया—देवकुलीश ! तेरी आँखें नंगे सत्य का दृश्य देखने में असमर्थ होने के कारण

फूट गई। अब संसार की कोई शक्ति ऐसी नहीं, जो उन्हें ठीक कर सके। मैंने तुझसे कहा था, यह विचार छोड़ दे; परंतु तूने न माना, और अब तूने देख लिया कि जब मनुष्य सत्य को नंगा देखना चाहता है तो क्या देखता है। सत्य परदों के अंदर ही से देखा जा सकता है। जब उसका परदा उतार दिया जाता है तो मनुष्य वह देखता है, जो कभी नहीं देख सकता।

देवकुलीश बादलों के पहाड़ पर मुँह के बल गिर पड़ा और फूट फूटकर रोने लगा।

हजारों वर्ष बीत चुके हैं; मगर एथेंस के सत्यार्थी की खोज अभी तक जारी है। अगर कोई आदमी बादलों के पहाड़ की सुनसान घाटियों में जा सके, तो उसे देवकुलीश के रोने की आवाज़ अभी उसी तरह सुनाई देगी।

झलमला

मैं बरामदे में टहल रहा था। इतने में मैंने देखा कि बिमला दासी अपने आँगन के नीचे एक प्रदीप लेकर बड़ी भाभी के कमरे की ओर जा रही है। मैंने पूछा—क्यों री! यह क्या है? वह बोली—झलमला। मैंने फिर पूछा—इससे क्या होगा? उसने उत्तर दिया—नहीं जानते हो बाबू, आज तुम्हारी बही भाभी पंडितजी की बहू की सखी होकर आई हैं, इसी लिए मैं उन्हें झलमला दिखाने जा रही हूँ।

तब तो मैं भी किताब फेंककर घर के भीतर दौड़ गया। दीदी से जाकर मैं कहने लगा—दीदी, थोड़ा तेल तो दो।

दीदी ने कहा—जा, अभी मैं काम में लगी हूँ।

मैं निराश होकर अपने कमरे में लौट आया। फिर मैं सोचने लगा—यह अवसर जाने न देना चाहिए, अच्छी दिल्लगी होगी। मैं इधर-उधर देखने लगा। इतने में मेरी दृष्टि एक मोमबत्ती के टुकड़े पर पड़ी। मैंने उसे उठा लिया और दियासलाई का बक्स लेकर भाभी के कमरे की ओर गया। मुझे देखकर भाभी ने पूछा—कैसे आये बाबू; मैंने बिना उत्तर दिये ही मोमबत्ती के टुकड़े को जलाकर उनके सामने रख दिया। भाभी ने हँसकर पूछा—यह क्या है?

मैंने गंभीर स्वर में उत्तर दिया—भलमला ।

भाभी ने कुछ न कहकर मेरे हाथ पर पाँच रुपये रख दिये । मैं कहने लगा—भाभी, क्या तुम्हारे प्रेम के आलोक का इतना ही मूल्य है ? भाभी ने हँसकर कहा—तो कितना चाहिए ! मैंने कहा—कम से कम एक गिनी । भाभी कहने लगी—अच्छा इस पर लिख दो ; मैं अभी देती हूँ ।

मैंने तुरत ही चाकू से मोमबत्ती के टुकड़े पर लिख दिया—‘मूल्य एक गिनी ।’ भाभी ने गिनी निकालकर मुझे दे दी और मैं अपने कमरे में चला आया । कुछ दिनों बाद गिनी के खर्च हो जाने पर मैं यह घटना बिलकुल भूल गया ।

(२)

द्व वर्ष व्यतीत हो गये । मैं बी० ए०, एल-एल० बी० होकर इलाहाबाद से घर लौटा । घर की वैसी दशा न थी जैसी आठ वर्ष पहले थी । न भाभी थी, न विमला दासी ही । भाभी हम लोगों को सदा के लिए छोड़कर स्वर्ग चली गई थी, और विमला कटंगी में खेती करती थी ।

संध्या का समय था । मैं अपने कमरे में बैठा न-जाने क्या सांच रहा था । पास ही कमरे में पड़ोस की कुछ स्त्रियाँ के साथ दीदी बैठी थी । कुछ बातें हो रही थीं, इतने में मैंने सुना, दीदी किसी स्त्री से कह रही हैं—कुछ भी हो बहिन, मेरी बहू घर की लक्ष्मी थी । उस स्त्री ने कहा—हाँ बहिन, खूब याद आई, मैं तुमसे पूछनेवाली थी । उस दिन तुमने मेरे पास सखी का संदूक भेजा था न ? दीदी ने उत्तर दिया—हाँ बहिन, बहू कह गई थीं, उसे राहिणी को दे देना । उस स्त्री ने कहा—उसमें सब तो ठीक था ; पर एक विचित्र बात थी । दीदी ने पूछा—कैसी विचित्र बात ! वह कहने लगी—उसे मैंने खोलकर एक दिन देखा तो उसमें एक जगह खूब हिफाजत से रेशमी रुमाल में कुछ बँधा हुआ था । मैं सोचने लगी यह क्या है । कौतूहलवश उसे खोलकर देखा । बहिन, कहो तो उसमें भला क्या रहा होगा ? दीदी ने उत्तर दिया—गहना रहा होगा । उसने हँसकर कहा—नहीं, गहना न था । वह तो एक अधजली मोमबत्ती का टुकड़ा था और उसपर लिखा था—‘मूल्य एक गिनी ।’ क्षण-भर के लिए मैं जान-शून्य हो गया, फिर अपने हृदय

के आवेग को न रोककर मैं उस कमरे में घुस पड़ा और चिल्लाकर कहने लगा—वह मेरी है ; मुझे दे दो ! कुछ स्त्रियाँ मुझे देखकर भागने लगीं । कुछ इधर-उधर देखने लगीं । उस स्त्री ने अपना सिर ढाँपते-ढाँपते कहा—अच्छा बाबू, कल मैं उसे भेज दूँगी । पर मैंने रात को ही एक दासी भेजकर उस टुकड़े को मँगा लिया । उस दिन मुझसे कुछ नहीं खाया गया । पूछे जाने पर मैंने यह कहकर टाल दिया कि सिर में दर्द है । बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता रहा । जब सब सोने के लिए गये तब अपने कमरे में आया । मुझे उदास देखकर कमला पूछने लगी—सिर का दर्द कैसा है ? पर मैंने कुछ उत्तर न दिया, चुपचाप जेब से मोखवर्ती को निकालकर उसे जलाया और उसे एक कोने में रख दिया ।

कमला ने पूछा—यह क्या है ?

मैंने उत्तर दिया—भलमला ।

कमला कुछ न समझ सकी । मैंने देखा कि थोड़ी देर में मेरे भलमले का लुद्र आलोक रात्रि के अंधकार में विलीन हो गया ।

खेल

मौन-मुग्ध संध्या स्मित प्रकाश से हँस रही थी । उस समय गंगा के निर्जन बालुका-तीर पर एक बालक और एक बालिका अपने को और सारे विश्व को भूल, गंगातट के बालू और पानी को अपना एकमात्र आत्मीय बना, उनसे खिलवाड़ कर रहे थे ।

प्रकृति इन निर्दोष परमात्म-खंडों को निःस्तब्ध और निर्निमेष निहार रही थी । बालक कहीं से एक लकड़ी लाकर तट के जल को छुटा छुटा उछाल रहा था । पानी मानों चोट खाकर भी बालक से मित्रता जोड़ने के लिए विह्वल हो उछल रहा था । बालिका अपने एक पैर पर रेत जमाकर और थोप-थोपकर एक भाड़ बना रही थी ।

बनाते-बनाते भाड़ से बालिका बोली—देख, ठीक नहीं बना तो मैं तुम्हें फोड़ दूँगी । फिर बड़े प्यार से थपका-थपकाकर उसे ठीक करने लगी । सोचती जाती थी, इसके ऊपर मैं एक कुटी बनाऊँगी—वह मेरी कुटी होगी ।

और मनोहर !...नहीं, वह कुटी में नहीं रहेगा, बाहर खड़ा-खड़ा भाड़ में पत्ते भोंकेगा । जब वह हार जायगा, बहुत कहेगा, हाथ जोड़ेगा, तब मैं उसे अपनी कुटी के भीतर लूँगी ।

मनोहर उधर अपने पानी से हिलमिलकर खेल रहा था । उसे क्या मालूम कि यहाँ अकारण ही उस पर रोष और अनुग्रह किया जा रहा है ।

बालिका सोच रही थी, मनोहर कैसा अच्छा है । पर वह दंगई बड़ा है । हमें छोड़ता दी रहता है । अबके दंगा करेगा, तो हम उसे कुटी में सांभो नहीं करेंगे । सांभी होने को कहेगा तो उससे शर्त करवा लेंगे, तब सांभा करेंगे ।

बालिका सुरवाला सातवें वर्ष में थी । मनोहर कोई दो साल उससे बड़ा था ।

बालिका को अचानक ध्यान आया, भाड़ की छत तो गरम होगी । उस पर मनोहर रहेगा कैसे ! मेरा क्या, मैं तो रह जाऊँगी ; पर मनोहर ता जलेगा । फिर सोचा, उससे मैं कह दूँगी, भाई, छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत आओ । पर वह अगर नहीं माना ? मेरे पास वह बैठन को आया ही—तो ! मैं कहूँगी, भाई, ठहरो, मैं ही बाहर आती हूँ । ...पर वह मेरे पास आने की ज़िद करेगा क्या ?...ज़रूर करेगा, वह बड़ा हठी है । पर मैं उसे आने नहीं दूँगी । बेचारा तपेगा—भला कुछ ठीक है ! ज्यादा कहेगा, मैं धक्का दे दूँगी, कहूँगी—अरे जल जायगा मूर्ख ! यह सोचने पर उसे बड़ा मज़ा-सा आया । पर उसका मुँह सूब गया । उसे माता सचमुच ही धक्का खाकर मनोहर के गिरने का हास्योत्पादक और करुण दृश्य सत्य की भाँति प्रत्यक्ष हो गया ।

बालिका ने दो एक पक्के हाथ भाड़ पर लगाकर देखा—भाड़ अब बिल-कल बन गया है । मा जिस सतके सावधानी के साथ अपने नवजात शिशु को बिछौने पर लेटाने को छोड़ती है, वैसे ही सुरवाला ने अपना पैर धीरे-धीरे भाड़ के नीचे से खींचकर निकाला । इस क्रिया में वह सचमुच भाड़ को पुचकारती-सी जाती थी । उसके पैर पर ही तो भाड़ टिका है । पैर का आश्रय हट जाने पर बेचारा कहीं टूट न पड़े ! पैर साफ निकालने पर भाड़ जब ज्यों-का-त्यों टिका रहा, तब बालिका एक बार आह्लाद से नाच उठी ।

बालिका अब एकदम ही बेवकूफ मनोहर को इस अलौकिक चातुर्य से

परिपूर्ण भाड़ के दर्शन के लिए दौड़कर खींच लाने को उद्यत हो गई। मूर्ख लडका पानी से उलझ रहा है; यहाँ कैसी जबरदस्त कारगुजारी हुई है— सो नहीं देखता ! ऐसा पक्का भाड़ उसने कहीं देखा भी है !

पर सोचा, अभी नहीं; पहले कुटी तो बना लूँ। यह सोचकर बालिका ने रेत की एक चुटकी ली और बड़े धीरे-से भाड़ के सिर पर छोड़ दी। फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी। इस प्रकार चार चुटकी रेत धीरे-धीरे वहाँ छोड़कर सुरबाला ने भाड़ के सिर पर अपनी कुटी तैयार कर ली।

भाड़ तैयार हो गया। पर पड़ोस का भाड़ जब बालिका ने पूरा-पूरा याद किया, तो पता चला कि एक कमी रह गई। धुआँ कहीं से निकलेगा ! तनिक सोचकर उसने एक सीक टेढ़ी करके उसमें गाड़ दी। बस, ब्रह्मांड का सबसे संपूर्ण भाड़ और विश्व की सबसे सुन्दर वस्तु तैयार हो गई।

वह उजड़ु मनोहर को इस अपूर्व कारीगरी का दर्शन करावेगा, पर अभी ज़रा थोड़ा देख तो ले। सुरबाला मुँह खुला, आँख स्थिर, इस भाड़-श्रेष्ठ को देख-देखकर विस्मित और पुलकित होने लगी। परमात्मा कहाँ विराजते हैं, कोई इस बाला से पूछे, तो वह बताये, इस भाड़ के जादू में।

मनोहर अपनी सुरी-सुरी सुरी की याद कर, पानी से नाता तोड़ और हाथ की लकड़ी को भरपूर जोर से गगा की धारा में फेंक जब मुड़ा, तब श्री सुरबाला देवी एकटक अपनी परमात्मा लीला के जादू को वृक्षों और सुलभाने में लगी हुई थी।

मनोहर ने बाला की दृष्टि का अनुसरण कर देखा—आमती बिल्कुल अपने भाड़ में अटकी हुई हैं। उसने ज़ोर से कहकहा लगाकर एक लात में भाड़ का काम तमाम कर दिया।

न-जाने क्या क़िला फ़तह किया हो, ऐसे महत्त्व से भरा मनोहर चिल्लाया—सुरी रानी !

सुरी रानी मूक खड़ी थीं। उनके मुँह पर जहाँ विशुद्ध रस था, वहाँ अब एक शून्य फैल गया। रानी के सामने एक स्वर्ग सांगोपांग उपस्थित था। वह उन्हीं का अपना रचा हुआ था और वह एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस स्वर्ग की एक-एक मनोरमता और स्वर्गीयता को दिखलाना चाहती थीं।

हा, हंत ! वह व्यक्ति आया और उसने अपनी लात से उसे तोड़-फोड़ डाला ! रानी हमारी बड़ी व्यथा से भर गई ।

हमारे विद्वान् पाठकों में से कोई हाता, तो उस झूठमूठ की मूर्ख रानी को समझाता—यह संसार क्षणभंगुर है । इससे दुःख क्या और सुख क्या । जो जिससे बनता है, वह उसी में लय हो जाता है । इसमें शोक और उद्वेग की क्या बात है ! यह संसार जल का बुदबुदा है, फूटकर किसी रोज़ जल में ही मिल जायगा । फूट जाने में ही बुदबुदे की सार्थकता है । जो यह नहीं समझते वे दया के पात्र हैं । री, मूर्ख लड़की, तू समझ । सब ब्रह्मांड ब्रह्मा का है, और उसी में लीन हो जायगा । इससे तू किसलिए व्यर्थ व्यथा सह रही है ? रेत का तेरा भाड़ क्षणिक था, क्षण में लुप्त हो गया, रेत में मिल गया । इस पर खेद मत कर, इससे शिक्षा ले । जिसने लात मारकर उसे तोड़ा है, वह तू परमात्मा का केवल साधन-मात्र है । परमात्मा तुझे नवीन शिक्षा देना चाहते हैं । लड़की, तू मूर्ख क्यों बनती है ? परमात्मा की इस शिक्षा का समझ और परमात्मा तक पहुँचने का प्रयास कर...आदि आदि ।

पर बेचारी बालिका का दुर्भाग्य, कोई विज्ञ धीमान् पंडित तत्त्वोपदेश क लिए उस गंगा तट पर नहीं पहुँच सके । हमें तो यह भी संदेह है कि सुरी एक-दम इतनी जड़-मूर्खा है कि यदि कोई परोपकार-रत पंडित परमात्म-निर्देश में वहाँ पहुँचकर उपदेश देने भी लगते, तो वह उनकी बात को न सुनती और न समझती । पर, अब तो वहाँ निर्बुद्धि शठ मनोहर के सिवा कोई नहीं है और मनोहर विश्व-तत्त्व की एक भी बात नहीं जानता । उसका मन न जाने कैसा हो रहा है । कोई उसे जैसे भीतर-ही-भीतर मसोसे डाल रहा है । लेकिन उसने बनकर कहा—सुरो, दुत पगली, रुठती है !

सुरबाला वैसी ही खड़ी रही ।

‘सुरी, रुठती क्यों है ?’

बाला तनिक न हिली ।

सुरी ! सुरी !...ओ, सुरो !’

अब बनना न हो सका । मनोहर की आवाज़ हठातू कँपी-सी निकली ।

सुरबाला अब और मुँह फेरकर खड़ी हो गई। स्वर के इस कंपन का सामना शायद उससे न हो सका।

‘सुरी, ...ओ सुरिया ! मैं मनोहर हूँ...मनोहर !...मुझे मारती नहीं !’—यह मनोहर ने उसके पाठ पीछे से कहा और ऐसे कहा, जैसे वह यह प्रकट करना चाहता है कि वह रो नहीं रहा है।

‘हम नहीं बोलते।’—बालिका से बिना बोले न रहा गया। उसका भाड़ का स्वर्ग शायद विलीन हो गया और उसका स्थान और बाला की सारी दुनिया का स्थान काँपती हुई मनोहर की आवाज़ ने ले लिया। वही आवाज़ मानो सब कहीं व्यापक चित्र-सी लिख गई।

मनोहर ने बड़ा बल लगाकर कहा—सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है, वह बड़ा खराब है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नहीं देती ! उसे एक थप्पड़ लगा—वह अब कभी क्रूर नहीं करेगा।

बाला ने कड़ककर कहा—चुप रहो जी !

‘चुप रहता हूँ ; पर मुझे देखोगी भी नहीं ?’

‘नहीं देखते।’

‘अच्छा, माँ देखो। मत ही देखो। मैं अब कभी सामने न आऊँगा, मैं इसी लायक हूँ।’

‘कह दिया तुमसे, चुप रहो। हम नहीं बोलते।’

बालिका में व्यथा और क्रोध कभी का खत्म हो चुका था। वह तो जाने कहाँ उड़कर खो चुका था। यह कुछ और ही भाव था। यह एक उल्लास था जो व्याज-क्रोध का रूप धर रहा था। दूसरे शब्दों में यह स्त्रीत्व था।

मनोहर बोला—लो सुरी, मैं नहीं बोलता। मैं बैठ जाता हूँ। यहीं बैठा रहूँगा। तुम जब तक न कहोगी, न उठूँगा, न बोलूँगा।

मनोहर चुप बैठ गया। कुछ क्षण बाद हारकर सुरबाला बोली—हमारा भाड़ क्यों तोड़ा जी ? हमारा भाड़ बना के दो !

‘लो, अभी लो।’

‘हम वैसा ही लेंगे।’

‘वैसा ही लो, उससे भी अच्छा।’

‘उस पै हमारी कुटी थी, उस पै, धुएँ का रास्ता था ।’

‘ला, सब लो । तुम बताती जाओ, मैं बनाता जाऊँ ।’

‘उम नहीं बतायेंगे । तुमने क्यों तोड़ा ? तुमने तोड़ा, तुम्हीं बनाओ ।’

‘अच्छा ! पर तुम हथर देखो तो ।’

‘हम नहीं देखते, पहले भाड़ बना के दा ।’

मनोहर ने एक भाड़ बनाकर तैयार किया । कहा—‘जो, भाड़ बन गया ।’

‘बन गया ?’

‘हाँ !’

‘धुएँ का रास्ता बनाया ? कुटी बनाई ?’

‘हाँ कैसे बनाऊँ—बताओ तो ।’

‘पहले बनाओ, तब बताऊंगी ।’

भाड़ के सिर पर एक सीं लगाकर और एक पत्ते की थोड़ लगाकर कहा—‘बना दिया ।’

तुरंत मुड़कर सुरबाला ने कहा—‘अच्छा दिखाओ !’

‘सींक ठाक नहीं लगी जी, पत्ता ऐसे लगेगा ?’—आदि-आदि संशोधन कर चुकन पर मनोहर को हुक्म हुआ—

‘थोड़ा पानी लाओ, भाड़ के सिर पर डालेंगे ।’

मनोहर पानी लाया ।

गगाजल से करपात्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुरी रानी ने एक लात से भाड़ के सिर का चकनाचूर कर दिया ।

सुरबाला रानी हँसी से नाच उठी ! मनोहर उत्फुल्लता से कहकहा लगाने लगा । उस निर्जन प्रांत में वह निर्मल शिशुहास्य-रव लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया । सुरज महाराज बालकों जैसे-लाल-लाल मुँह से गुलाबी हँसी हँस रहे थे । गंगा मानों जान-बूझकर किलकारियाँ भर रही थीं । और—और वे लंबे ऊँचे दिग्गज पेड़, दार्शनिक पंडितों की भाँति, सब हास्य की सार-शून्यता पर मन ही मन गभीर तत्त्वावलोकन कर, कहीं हँसी में भूले मुखों पर आँसू बहाना तो नहीं चाह रहे थे—वे बेचारे !

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से. और अगर रामू की बहू घर-भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीना हुआ मायके से प्रथम बार ससुराल में आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार-पर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ ; सासजो ने माला लिया और पूजा पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार-घर खुला है तो कभी भंडार-घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली का मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के ढक्के-पजे। रामू की बहू हाँड़ी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढँककर मिसरानी को जिनस देने गई और दूध नदारद। अगर यह बात यहाँ तक रह जाती तो बुरा न था, कबरी रामू को बहू से कुछ ऐसा परक गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आये तब कटोरी साफ़ चटी हुई। बाज़ार से बालाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, बालाई गायब। रामू की बहू ने तै कर लिया या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबंदी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया, उसमें दूध, बालाई, चूहे, और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगनेवाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगमीं दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी ; पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फ़ासिले पर कि रामू की बहू उसपर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थी सास की मीठी झिड़कियाँ, और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औंटे गये, सोने का बर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा, माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अंदाज़ी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा भनभनाइट की आवाज़ के साथ फर्श पर।

आवाज़ रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूत्त का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चपत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नींद न आई, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर ज़िंदा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठो बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुसकराती हुई वह उठी। कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाज़े की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौक़ा हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली, न डुली, न चीखी, न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई।

आवाज़ जो हुई तो महरी भाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और

सास पूजा छोड़कर घटना-स्थल पर उपस्थित हो गईं। रामू की बहू सर झुकाये हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—अरे राम, बिल्ली तो मर गई। माजी, बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।

मिसरानी बोली—माजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनायेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।

सासजी बोली—हाँ, ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाय तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला !

महरी ने कहा—फिर क्या हो, कदो तो पंडितजी को बुलाय लाई।

सास की जान में जान आई—अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पंडितजी को बुला ला।

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पंडित परममुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही उठ पड़े। पंडिताइन से मुस्कराते हुए बोले—भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली। प्रायश्चित्त होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।

पंडित परममुख चौबे छोटे-से मोटे-से आदमी थे। लंबाई चार फीट दस इंच, और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच, चेहरा गोल-मटोल, मुँह बड़ी-बड़ी, रंग गौरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराकवाले पंडितों को ढूँढ़ा जाता था तो पंडित परममुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पंडित परममुख पहुँचे, और कोरम पूरा हुआ। पंचाहत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की मा, लखनू की दादी और पंडित परममुख ! बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माने कहा—पंडितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है ?

पंडित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महरत भी जब मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है ।

‘यही कोई सात बजे सुबह ।’—मिसरानीजी ने कहा ।

पंडित परमसुख ने पत्रे के पत्रे उलटते, अक्षरों पर उँलियाँ चलाईं, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा । चेहरे पर धुँधलाहून आया । माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गंभीर हो गया, हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्राह्म-मूर्त में बिल्ली की हत्या ! घोर कुंभीपाक नरक का विधान है । रामू की मा, यह तो बड़ा बुरा हुआ ।

रामू की मा की आँखों में आँसू आ गये—तो फिर पंडितजी, अब क्या होगा, आप ही बतलायें ?

पंडित परमसुख मुसकराये—रामू की मा, चिंता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं ? शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है, सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जायगा ।

रामू की मा ने कहा—पंडितजी, इसी लिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय ?

‘किया क्या जाय—यही एक सोने को बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जायगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद एकस दिन का पाठ हो जाय ।’

छन्नू की दादो—हाँ, और क्या, पंडितजी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय ।

रामू की मा ने कहा—तो पंडितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय ?

पंडित परमसुख मुसकराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय ! अरे रामू की मा, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय । लेकिन अब कलि-

युग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की मा, बिल्ली के तौल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-एक़ीस सेर से कम की क्या होगी; हाँ, कम से कम एक़ीस तोले की बिल्ली बनवा कर दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा !

रामू की मा ने आँखें फाड़कर पंडित परमसुख को देखा—अरे बाप रे ! एक़ीस तोला सोना ! पंडितजी, यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से काम न निकलेगा ?

पंडित परमसुख हँस पड़े—रामू की मा ! एक तोला सोने की बिल्ली ! अरे, रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं !

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया ।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई । पंडित परमसुख ने कहा—उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं ! रामू की मा, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना ।

‘पूजा का सामान कितना लगेगा !’

‘अरे कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी, और मन-भर नमक भी लगेगा । बस, इतने से काम चल जायगा ।’

‘अरे बाप रे ! इतना सामान, पंडितजी, इसमें तो सौ-डेढ़-सौ रुपया खर्च हो जायगा ।’ रामू की मा ने रुआँसी होकर कहा ।

‘फिर इससे कम में तो काम न चलेगा । बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की मा ! खर्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को तो देख लां ! यह तो प्रायश्चित्त है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है—और जैसी जिसकी मरजादा, प्रायश्चित्त में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है । आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं । अरे सौ-डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ की भैल है ।’

पंडित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की मा ने कहा—

पंडितजी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए ।

छन्नू की दादी ने कहा—और नहीं तो क्या, दान-पुत्र से ही पाप कटते हैं । दान-पुत्र में किफायत ठीक नहीं ।

मिसरानी ने कहा—और फिर माजी, आप लोंग बड़े आदमी ठहरे । इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा !

रामू की मा ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पंडितजी के साथ । पंडित परममुख मुसकरा रहे थे । उन्होंने कहा—रामू की मा, एक तरफ तो बहू के लिए कुंभीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्च है । सो उससे मुँह न मोड़ो ।

एक ठंडी सँस लेते हुए रामू की मा ने कहा—अब तो जो नाच नचाआगे, नाचना ही पड़ेगा ।

पंडित परममुख ज़रा कुछ बिगड़कर बोले—रामू की मा ! यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो—मैं चला ! इतना कहकर पंडितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा ।

‘अरे पंडितजी, रामू की मा को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगाड़ो न ।’ मिसरानी, छन्नू की दादी और कसनू की मा ने एक स्वर में कहा ।

रामू की मा ने पंडितजी के पैर पकड़े—और पंडितजी ने अब जमकर आसन जमाया ।

‘और क्या हो ?’

‘इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा ।’ कुछ रुककर पंडित परममुख ने कहा—सो इसकी चिंता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायगा ।

‘यह तो पंडितजी ठीक कहते हैं, पंडितजी की तोद तो देखो...’ मिसरानी ने मुसकराते हुए पंडितजी पर व्यंग्य किया ।

‘अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की मा, ग्यारह तोला

सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घंटे में मैं बनवाकर लौटूँगा तब तक सब पूजा का प्रबंध कर रखो—और देखो, पूजा के लिए—'

पंडितजी की बात श्रुत भी न हुई थी कि महराी हाँफती हुई कमरे में घुस आई, और सब लोग चौंक उठे। रामू की मा ने घबड़ाकर कहा—अरी क्या हुआ री !

महराी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—माजी, बिल्ली तो उठकर भाग गई

उपहार

विमला खाना परोस रही थी। कमल बैठा पत्र लिख रहा था। वह सोचता था कि जब इसे समाप्त कर लूँगा, तब उठूँगा। देर ही क्या है, कुछ भी तो और अधिक नहीं लिखना है। बस, यही दो-तीन—हाँ, दो ही—पंक्तियाँ और लिखने को हैं कि फिर मैं हूँ और भोजन।

और विमला मन ही मन भुँभुला रही थी कि जब तक मैं शाक पकाऊँ-पकाऊँ, तब तक तो आफत मचा दी। दो दो मिनट में विकल हो-होकर पूछते रहे कि कितनी देर है—कितनी देर है ! और अब जब मैं खाना परोसने लगी, तो 'आया, आया, बस अभी हाल आया' कह रहे हैं—मगर आते नहीं ! बस, इनकी यही प्रकृति मुझे अच्छी नहीं लगती। कितनी तकलीफ़ होती है खाना पकाने में ! बनाना पड़े, तो मालूम हो जाय। और मालूम क्या हो जाय, खुद भी तो न खा सकें उसे ! फिर भी किसी तरह जो मर-खप के बना भी लूँ, तो यह हाल है इनका कि मुझे ही बेवकूफ़ बनना पड़ता है। कुछ कहो, तो भट जवाब दे बैठेंगे कि फिर बनाती ही बेकार हो—मैंने तो हजार बार कहा कि महराजिन रख लो।...मैं भी बैठी रहूँगी, इसी तरह। जब बुलाना व्यर्थ है, तो बुलाया ही क्यों जाय ! न, मैं अब नहीं बुलाऊँगी, नहीं, किसी तरह नहीं !

'अरे सुनती हो ?'

विमला को ही लक्ष्य करके कमल ने कहा था। लेकिन विमला ने सुनकर भी नहीं सुना। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। वह क्यों उत्तर दे ? किसका उत्तर दे ? किसे उसके उत्तर की अपेक्षा है ? जब कहते-कहते हार गई, तब नहीं आये। और अब इतनी देर के बाद भी, वहीं से कहते हैं—सुनती हो ?

कौन सुनती है ? कोई नहीं सुनती ! क्यों सुने कोई ? क्या पढ़ी है उसे, जो सुने ? वह नहीं सुनती है । कोई नहीं सुन रहा है । कोई सुनने क्यों लगा ? वह सुनती तो है, मगर नहीं सुनती । हाँ, नहीं सुनती ।

कमल अब उठकर उसके पास चला आया । वह चला तो आया, पर निकट खड़ा रहकर बोला—कुछ लोग आ गये हैं और उनसे इसी समय दो बातें कर लेनी हैं । बेचारे बड़ी दूर से आये हैं । मुझे यह नहीं हो सकता कि उन्हें बैरंग वापस लौटा दूँ । कुछ वक्त देना ही पड़ेगा । कुछ ऐसी ही आवश्यकता है । समझती हो न ? तुम अब खाना खा लो । मुझे शायद देर ही लग जाय ।...शायद क्या, बल्कि निश्चित है देर लग जाना ।

विमला ने पहले तो चाहा कि वह चुप ही रहे अब भी, उनकी इस बात का कोई उत्तर न दे । किन्तु वह वास्तव में इस प्रकार की नारी नहीं है । परिस्थिति और कारण को लेकर उसकी मर्यादा की अवमानना करना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है । वह श्रुति से उलझती रहती है, क्योंकि उसी का प्रभाव लेकर भविष्य को देखती है; किन्तु वर्तमान की उपेक्षा उसे स्वीकार नहीं होता । अतएव उसने कहा—किन्तु क्या दस-पौच मिनट के लिए उन्हें रोक नहीं सकते ? वे लोग क्या तुम्हारा इस समय भोजन करना भी रोक देना उचित समझेंगे ? तुम्हारी असुविधा का क्या उन्हें कुछ भी खयाल न होगा ?

कमल ने लक्ष्य किया, विमला खुद भी भूखी है । समय भी अबिक हो गया । इसी स्थिति में उसने भोजन बनाया है । कितनी देर से वह प्रतीक्षा में बैठी है । और अब, जब कि मुझे उसके साथ बैठकर खाना चाहिए, मैं उससे इस प्रकार का प्रस्ताव कर रहा हूँ !

उसने एक बार फिर जो विमला के उत्तम अरुण मुख की ओर ध्यान से देखा तो उसे अपना प्रस्ताव सर्वथा अप्रीतिकर प्रतीत हुआ । वह लौट पड़ा । लौटते हुए कह गया—अच्छा, तो मैं अभी आया । उन्हें कमरे में आदर के साथ बिठा आऊँ और साथ ही दस मिनट तक और अधिक प्रतीक्षा करने की अनुमति ले आऊँ ।

‘ओह ! तुम आये हो—मेरे राधाकांत बाबू—यह डेपूटेशन लेकर,

अच्छा ! लेकिन यार, बहुत दिनों में मिले हो, और फिर इस डेपूटेशन के साथ ! खैर, मैं अभी आया । मैंने अभी तक भोजन नहीं किया है । कुछ इतने आवश्यक कार्यों में लगा रहा कि भोजन करने तक को समय पर न उठ सका । जा ही रहा था कि पता चला, आप लोग तशरीफ़ लाये हैं ।' कमल ने स्वाभाविक उल्लास-मुखरित ढंग से कहा ।

‘अच्छा तो है । कर आओ भोजन ; लेकिन अकेले-ही-अकेले भोजन कर लोगे ?’ राधा बाबू ने हास के मृदुल दोलन में, साधारणतया कह दिया—उसी प्रकार, जैसे कोई भी मित्र दूसरे से ऐसी स्थिति में प्रायः कह ही देता है ।

‘अच्छी बात है, मेरा सौभाग्य ! चलो, तुम भी चलो ।’ कमल के उत्तर के साथ उसका हार्दिक उल्लास भी मिश्रित होकर फूट निकला ।

‘ऐसे नहीं जाता । इस तरह तुमको तो कुछ मालूम न होगा, किंतु दूसरी आत्मा को जो आकस्मिक कष्ट होगा, उसे मैं कैसे सहन करूँगा ! न यार कमलेश, मुझे इस समय भोजन नहीं करना है, मैं तो यों ही कह उठा था । मैं भोजन कर चुका हूँ । राधा बाबू कहते-कहते गम्भीर हो उठे ।

कमल ने लक्ष्य किया, यह राधाकांत एक समय कितना चटुल था ! क्लास भर इसके मारे परेशान, बल्कि एक प्रकार से आंदोलित रहता था । और आज देखता हूँ कि इस कालांतर में ही वह कैसा विवेकशील बन गया है ।

तब उस राधाकांत के प्रति कमल पहले अजेय आदरभाव से देखकर रह गया, फिर कुछ सोच-समझकर बोला—‘नहीं राधे, असुविधा की कोई बात न होगी । कम पड़ेगा तो कुछ और बाज़ार से मँगवा लूँगा । चलो, चलो ; अब तुम्हें चलना पड़ेगा ।

×

×

×

‘मेरे एक मित्र भी खायेंगे विमला ! बड़े ज़बरदस्त आदमी हैं । इच्छामात्र करने से सफलता इनके चरण चूमती रही है । मुझे इनका क्लासफ़ेलो रहने का गौरव प्राप्त हो चुका है । मुझे पता ही न था कि जेल जा-जाकर भी यह शैतान बजाय दुर्बल पड़ने के इतना मोटा पड़ जायगा । देखती क्या हो. वज़न में तीन मन से कम न होगा । यह जो कुछ भी तुमने बना रखा है, मैं तो समझता हूँ, केवल इसके लिए भी काफ़ी न होगा ।’ कमल ढूँढ़-ढूँढ़कर

ऐसे शब्दों का प्रयोग कर रहा है, जिससे विमला को पता चल जाय कि उसका यह मित्र ऐसा-वैसा साधारण व्यक्ति नहीं है। बड़ा आदमी तो वह है ही, साथ ही उसका घनिष्ठ मित्र भी है।

तब विमला ने स्वामी के इस घनिष्ठ मित्र को केवल एक दृष्टि से देखकर साड़ी को सिर पर, आगे तक, कुछ और अधिक खिसका लिया है। दो थालियों में भोजन जैसा परोसकर रखा था, उसे पूर्ववत् न रखकर उसमें थोड़ा-थोड़ा कम कर लिया है, क्योंकि आकस्मिक आतिथ्य और समय-असमय के जलपान के लिए जो मिष्ठ और सलोने खाद्य पदार्थ उसने बना रखे हैं, उनका भी उपयोग उसे अब करना है। बाज़ार से ही कुछ मँगाना पड़ा तो, फिर गृहस्थी की मर्यादा ही क्या रही ?

तुरन्त उसने कहा—आइए।

तब कमल अपने राधे को लेकर भोजन करने बैठ गया। वह भोजन कर रहा है और साथ ही साथ कुछ सोचता भी जाता है। यों निरंतर उसे कुछ न कुछ सोचना ही पड़ता है। बात कम, काम अधिक—यही उसकी प्रकृति है। किन्तु जब कोई मित्र आया हो और साथ में भोजन कर रहा हो, तब भी मौन ही बने रहना तो कुछ अधिक उत्तम या आवश्यक, प्रीतिकर या शोभन, प्रतीत नहीं होता। मानो इसी बात को लक्ष्यकर कमल ने कह दिया—और कहो राधे, खूब अच्छी तरह से हो न ? किसी प्रकार की कोई असु-विधा या कष्ट या...और क्या कहूँ ?

अन्तिम शब्द कहते-कहते कमल राधे के मुँह की ओर देखकर हँस पड़ा। 'देखता हूँ, तुम बहुत बड़े आदमी हो गये। यहाँ तक कि तुमने इतना वैभव अर्जित कर लिया, इतना कि तुम्हें देखकर मुझे ईर्ष्या होती है, तो भी तुम्हारा वह असाधारण सारल्य ज्यों का त्यों बना है !' राधे भोजन करते हुए अपनी ये बातें इतने मन्द क्रम से करता जाता है कि न तो उसकी आहार-गति प्रतिहत होने पाती है, न वार्ता-विनोद में ही किसी प्रकार की अरोचक मति का संयोग हो पाता है। साथ-ही-साथ वह कभी-कभी विमला पर भी एक दृष्टि डाल देता है।

‘तो तुम्हारा खयाल यह है कि काल-गति से हमारी प्रकृति भी बदल

जाती है ! लेकिन भाई राधे, मैं ऐसा नहीं मानता । जीवन के प्रकंपित अव-
धान हमारी गति बदल सकते हैं, हमारे आचार-व्यवहार की रूपरेखा को भी
उलट-पुलट डालते हैं । मैं यह मानता हूँ । किन्तु...किन्तु हमारी नैसर्गिक
प्रकृति पर उनका अनुशासन कभी चल नहीं सकता, क्षणिक परिवर्तन करने
में भले ही वे यदा-कदा सफल होते रहें ।’

राधे कमल की इस बात को सुनकर मुसकराने लगा ।

और कमल ने उसके इस हास की यथार्थता को लक्ष्य करके कहा—जान
पड़ता है, मेरे साथ तुम्हारा मतभेद पूर्ववत् बना है ।

विमला दोनों को बातें करते छोड़कर भंडार में चली गई थी । लौट
आकर उसने दो-दो कटोरियों में मिष्ठान और नमकीन पदार्थ दोनों थालियों
के निकट रख दिये । तब उसी समय एक कटोरी से कुछ खुरमे एक साथ
उठाकर मुँह में डालने के पूर्व राधे बोला—तुम्हारे गार्हस्थ्य-जीवन के इस
सफल स्वरूप के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कमलेश !

कमल हँसने लगा । बोला—अच्छा-अच्छा, यह बात है ! धन्यवाद ।
फिर विमला की ओर उत्फुल्ल लोचनों से देखकर कहने लगा—सुनती हो
विमला, राधे तुम्हें बधाई दे रहा है ।

विमला चाहती तो उत्तर में कुछ कह सकती थी । किन्तु वह कुछ कह
न सकी । हाँ, विकल्प में थोड़ी मुड़कर, कढ़ाई में रखे हुए शाक को एक
कटोरी में सम्हालकर रखने में व्यस्त अवश्य हो गई ।

तब राधे ने उस समय न तो विमला को ही कुछ कहने का अवसर
दिया, न कमलेश को । अब वह उसकी उस बात पर आ गया, जिस पर उसे
मतभेद था । वह बोला—हाँ, तुम्हारी उस बात को तो मैं भूल ही गया था,
प्रकृतिपरिवर्तन के संबंध में जो तुमने अभी कही थी ।

‘हाँ, हाँ, कहो-कहो । मैं जानना चाहता हूँ, इस विषय में तुमने क्या
अनुभव किया है, तुम्हारे विचार क्या हैं ?’ कमल ने कहा ही था कि राधे
बोल उठा—असल बात यह है, कमलेश भाई, कि मनुष्य की प्रकृति ही को
पहले ज़रा समझ लेने की ज़रूरत है । क्या उसकी प्रकृति है, और क्या
अप्रकृति, वास्तव में इसी का समझ लेना आवश्यक है । लोग प्रायः कहा

करते हैं, फ़लाँ आदमी तो बिलकुल ही बदल गया । लोग उसकी रूप-रेखा, उसके आकार-प्रकार को देखकर ही प्रायः इस तरह की बातें कह डालते हैं । पर परिस्थितियों के चक्र में घूमते और छिन्न-भिन्न होते हुए उसके क्षण-क्षण के जीवन को देखकर वे यह नहीं सोचते कि प्रकाश सदा प्रकाश ही रहता है । यह बात दूसरी है कि कोई प्रकाश दिन का हो, कोई निशा का । अब यहाँ प्रश्न यह है कि दिन का प्रकाश तो प्रकाश है और उसे संसार स्वीकार करता है । किन्तु जो प्रकाश रजनी के अन्तर से फूटा हुआ है, वह अंधकार क्यों है ?

तब तत्काल उत्तरंग मानस से कमलेश बोल उठा—वन्द्यकुल ! कितनी अच्छी बात तुमने अनायास कह डाली ! वाह !!

विमला ने उसी समय एक बार राधे के उस तेजोमय मुख की ओर दृष्टि-क्षेप किया । थोड़ी देर से उसकी छाती के भीतर भूकंप-कालीन रत्नाकर की भाँति जो भीम विस्फूर्जन प्रतिध्वनित हो रहा था, राधे के इस कथन को लेकर और फिर एक बार उसकी ओर देखकर आप-से-आप वह बिलकुल शिथिल, ध्वस्त हो उठा । जिस त्यक्त अतीत ने आज अभी उसके मन-प्राण तक का बार-बार स्तम्भित, विकल-विकंपित कर-करके एक अव्यक्त अभियोग से अति-शय अस्थिर किंवा विमूढ़ कर डाला था, निमेषमात्र के इस वैकल्पिक उपायन से उसके पराभूत चित्त की सारी दुर्बलता बात की बात में निष्प्रभ प्रशान्त हो उठी ।

इसी समय भोजन करके दोनों मित्र उठ खड़े हुए ।

× × × ×

रात के ग्यारह बजे हैं । कमलेश सो रहा है । पास ही विमला भी लेटी हुई करवटें बदल रही है । कुछ स्वप्न उसके मानसपट पर उतर आये हैं ।

‘तुम्हारी यह आदत अच्छी नहीं है, भैया !’

‘कौन-सी ?’

‘पूछते हो कौन-सी !’

‘लो, जब मालूम नहीं है, तब पूछना भी गुनाह है !’

‘हाँ, गुनाह । मैं तुमसे भैया जो कहती हूँ ।’

वह चुप रह गया। उसका मुख यकायक उतर गया। कोई बात वह फिर न कह सका। तब वह चलने लगी। कुछ उद्विग्न होकर अपना तिरस्कार अपने ऊपर लादकर। किन्तु उसी समय उसने सुना, वह कह रहा है—मेरी इस सखी आदत के अनुभव करने का तुम्हें अब कभी अवसर न मिलेगा विमला ! मैं यहाँ से चला जाऊँगा।

वह लौट पड़ी। अपनी मर्यादित गंभीरता से विचलित होकर वह बोली—सचमुच, क्या तुम कानपुर छोड़ दोगे ?

‘छोड़ना ही पड़ेगा विमला ; क्योंकि मनुष्य की प्रकृति बदल नहीं सकती।’ उत्तर में वह कुछ न कह सकी थी। यद्यपि उन निर्वाक, निःस्पन्द, निष्ठुर क्षणों ने उसके इस जीवन को हो वर्ध कर डाला, तो भी उन क्षणों को वह फिर कभी न पा सकी। आज तक न पा सकी।

किन्तु वह था कितना दृढ़प्रतिज्ञ ! उसने कानपुर छोड़ ही दिया। यद्यपि उसने कोई अपराध नहीं किया था। एकमात्र यही आदत थी उसकी कि वह मुझे देखकर पुनःकृत हो उठता था। उसके उस हास्य-मुखरित आनन की उद्दीप्त आभा, उसकी उल्लास-तृप्त आँखें, अपना आंतरिक भाव प्रकट करने का लोभ संवरण न कर सकती थीं। मुहल्ले की बात ठहरी। वह कभी अपनी सखियों के साथ निकलती, कभी मा-भाभी के साथ। और इन सबके साथ निकलने पर भी वह उसकी ओर एक बार देखे बिना मानता न था। पलतः एक अदृश्य बहिरभिमुखी लज्जा से वह बिलकुल संकुचित तथा अभिभूत हो उठती थी।

बस, यही उसका अपराध था—और उससे संलग्न यही उसकी असुविधा !

और उसके बाद यह आज का दिन है।

‘तुम्हारे गार्हस्थ्य जीवन के इस सफल स्वरूप के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ।’ और मेरे गार्हस्थ्य जीवन का यह कैसा ‘सफल स्वरूप है !’ ‘किन्तु जो प्रकाश रजनी के अंतर से फूटा हुआ है, वह अंधकार क्यों है ?’ कौन कहता है कि वह अंधकार है ! क्या अब भी किसी में इतना सादस है कि वह उसे अंधकार कह सके ? किन्तु यह बात तो तुमने अपने आपको देखकर कह डाली है ; क्योंकि तुम एक प्रकार के अकल्पित स्वप्न हो। किन्तु यह तो एक कविता हुई।

और इस विमला के भीतर जो नारी है, वह तो वैसी उस प्रकार की निरी-कविता नहीं है, उसका एक शरीर है, एक हृत्पिण्ड । कभी उसे छूकर देखते, तो जान पाते कि बाहर से प्रकाशमयी झलक मारनेवाली इस विमला के भीतर का अधकार अभी तक पूर्ववत् स्थिर है । अपने स्थान से वह टस-से-मस भी नहीं है । अभी तक उसके भीतर की गर्वित नारी उसी प्रकार तृप्ति है, जैसी वह कभी पहले थी । उसके प्रकृत स्वरूप का सांगोपांग अर्थ किया ही नहीं जा सका—यहाँ तक कि वह अभी तक मा भी नहीं हो सकी ! और फिर भी तुम उसके गार्हस्थ्य जीवन का साफल्य देखने चले थे ! ओह ! इस परिवार का अंतरंग न देखकर उसके बाह्य स्वरूप पर तुम ऐसे मुग्ध हो उठे कि बधाई भी उसे दे डाली । किंतु तुम्हारी यह बधाई तो उन्हीं के लिए थी । मेरे साथ उसका संबंध क्या ? न, वह बधाई मेरे लिए नहीं है, नहीं है ।

किंतु ठीक तो है । उन्होंने कह डाला था—सुनती हो विमला, राधे तुम्हें बधाई दे रहा है ।

लेकिन उनके कहने से भी वह बधाई मेरे लिए नहीं हो सकती । वह उनके लिए थी, हाँ, उन्हीं के लिए । तो क्या वास्तव में वे बधाई के पात्र हैं ? क्यों भला ? क्या वे बधाई के पात्र केवल इसलिए हैं कि मेरे जीवन की यह धारा भी उन्हीं के साथ-साथ प्रवाहित हो रही है ? तो तुम सोचते हो कि यह विमला अभी तक इसमें समर्थ है कि उसकी संगति का योगमात्र किसी को भी बधाई का पात्र बना सकता है ? उफ़, तुम ऐसा क्यों मानते हो राधे भैया ? क्या तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल गये ? क्या तुम्हें याद नहीं रहा कि तुमने किसी को कुछ कहा था ? कहा था कि मेरी इस बुरी आदत के अनुभव करने का अब तुम्हें कभी अवसर न मिलेगा !...तो फिर इतने दिनों के बाद तुमने यह अवसर क्यों दिया ?

भर, भर, भर !

ये आँसुओं की बूँदें हैं कि सुधारण्व के मोती !

ओह ! जीवन के ये दस वर्ष योही बीत गये । युग पलटा, कितने भूकंप आये । कितनी रिम-रिम रातें, कितनी शारदी निशाएँ, कितने वास्तविक

दोलन आये और गये; किंतु राधे की छाया भी कहीं न देख पड़ी। और एक युग के बाद, जान-बूझकर भी नहीं, अनायास वे जो इस कुटोर में आ ही पड़े, तो यह विमला, यह मूर्त कालिमा अपने आपको न देखकर दोष देती है उसे, जो दिवाकर की भाँति वरेण्य और मनस्वी है !

तो तुम मुझसे बोले क्यों नहीं ! कुछ विस्मय और कुछ दुलार से ओत-प्रोत होकर तुमने मुझे निकट पाकर, मेरा नाम लेकर पुकारा क्यों नहीं ! तुम्हारी मुद्रा इतनी गंभीर क्यों बनी रही ! एक बार भी सिर उठाकर तुमने मुझे ध्यान से देखा क्यों नहीं ! हूँ, मुझसे छूटकर जाओगे कहाँ !

भर, भर, भर !

ये अमृत की बूँदें क्रमागत रूप से क्यों आ रही हैं ! भरने से बूँदें तो यों निरंतर आ सकती हैं; किन्तु इस प्रकार के अमृत बूँदों को वह कहाँ से लायेगा ! और उनके निःस्त्राव के साथ यह निःस्वन कैसा है ! ये रुदन की सिसकियाँ हैं कि निर्भर की उत्ताल उर्मिमालाओं का अजस्र मुखरित महोत्साह ।

×

×

×

‘ऐं ! तुम रोती हो विमला ?’

एकाएक उठकर भट से विद्युत् प्रकाश प्रस्फुटित कर कमल विमला के पलंग पर आकर उससे मिश्रित होकर बैठ गया । फिर उसके सिर की कुन्तल-राशि, वेणी और उसके अन्तिम छोर तक अपना वाम हस्त फेरते हुए बोला—रोती क्यों हो विमला ! बतलाओ । मैं जानना चाहता हूँ, क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है !

अब विमला आँसू पोंछकर, स्थिर होकर, बैठ गई । उसका एक हाथ अब भी कमल के हाथों में था । उसके रुद्र-गभीर मुख की अप्रकृत भंगिमा देखकर कमल यकायक स्तब्ध हो उठा और उसी समय विमला बोली—अपराध !...अपराध की बात पूछते हो !

‘हाँ ।’

‘तो इस राधे को तुम अन्दर क्यों ले आये ! किससे पूछकर ले आये ?’

कमलेश श्रवाक् हो उठा । तुरन्त तो वह कोई भी उत्तर न दे सका । किन्तु क्षण-भर के बाद बोला—वह मेरा एक मित्र था, चिरपरिचित मित्र ।

उसका स्वागत-सत्कार करना मेरे लिए आवश्यक था...किन्तु वह कोई भी हो, उसके संबंध में इतना सोचने की आवश्यकता ही क्या है ?

‘वह क्यों आया था ?’

‘एक प्रस्ताव लेकर ।’

‘क्या उत्तर दिया ?’

‘उसकी बात मान लेना ही मैंने उचित समझा । स्वदेश के पीछे उसने अपना जीवन उत्सर्ग कर रखा है । उसे निर्विरोध कौंसिल में जाना चाहिए । उसके पक्ष में मैंने अपने आपको रोक लिया है ।’

‘जी—व—न—उ—त्स—र्ग कर र—खा है !’—विमला ने अनिश्चय मंद स्वर में अटक-अटककर इस तरह कहा कि कमल उसकी अपरूप मुद्रा को देखकर चकित-स्तंभित हो उठा । क्षण-भर रुककर बोला—‘बात क्या है विमला ? मैं ज़रा साफ़-साफ़ जानना चाहता हूँ !’

‘वह मेरा शत्रु है । मेरी जीवन-धारा को उसने व्यर्थ ही में विवृत करने की चेष्टा की है । मुहल्ले के नाते से मैं उसकी बहन होती हूँ । फिर भी जान-बूझकर उसने मेरी अवहेलना की । मैं इसे कैसे सहन कर सकती हूँ !’

×

×

×

‘अरी पगली—यह मेरी ही भूल है ! लेकिन तुम जानती हो विमला, मैं कुछ आज का नया भुलकड़ नहीं हूँ ।’ खैर, मुझे इसका दुःख है ।’ चलते चलाते वह अपनी सोने की घड़ी तुम्हें भेंट-स्वरूप दे गया है । उसने कहा भी था—यह घड़ी मेरी बहन को दे देना । तुम उसे ले लो अभी । वह मेरे कोट के भीतरी जेब में पड़ी है ।’

और विमला सोचती है—यह उपहार है कि मृत्यु !

पथ में से

हमेशा का भ्रंश छूटने का भाव दिखाते हुए मैंने कह दिया—अच्छा चलो ; परन्तु आज के ही लिए । फिर कभी नहीं ।

रामदेव ज़ोर से हँस पड़ा, बोला—फिर कभी ले चलने की मुझे ज़रूरत न पड़ेगी । फिर तो तुम्हीं मुझे घसीटकर ले चला करोगे ।

अपनी भोंप मिटाने के लिए मैंने हँसकर उसके कंधे पर अपने दोनों हाथ दे मारे । कहा—तुम बड़े दुष्ट हो !

रामदेव को 'दुष्ट' कहना ही उसकी सबसे बड़ी प्रशंसा थी । अपनी दुष्टता के गौरव का अनुभव करके उसका मुँह आनन्द से और भी दमक उठा । मुझे चलने के लिए बिलकुल तैयार देखकर मुँह पर विस्मय का भाव लाते हुए बोले—भले आदमी, आज भी यह टाट ही पहने रहोगे ! घण्टे भर के लिए इसे छोड़ दोगे, जन्म-भर का पुण्य चला न जायगा !

रामदेव 'टाट' कहकर मेरे खदर की हँसी उड़ाया करता था । असहयोग के दिनों की उत्तेजना के वशीभूत होकर मैंने खदर पहनना शुरू किया था । बाद में मालूम हुआ कि यह वेश धारण करना जितना आसान है, इसे निभा ले जाना उतना ही कठिन है; परन्तु केवल इसी के कारण जनता से जो श्रद्धा प्राप्त थी, वह आसानी से नहीं छोड़ी जा सकती थी । खदर मेरे लिए वह चटपटा भोजन हो गया था, जो अपनी तीक्ष्णता के कारण आँखों से आँसु लाता है, फिर भी जीभ से नहीं छोड़ा जाता । मैंने रामदेव की बात का कोई जवाब न दिया । चुपचाप उसके साथ हो लिया । न जाने क्या सोचकर उसने भी कुछ नहीं कहा ।

मेरे मन में विचारों की एक हलचल शुरू हो गई । जिस कुत्सित पथ पर आज मैं जा रहा था, वह मेरे लिए बिलकुल नया था । अपने स्खलन की सारी जिम्मेदारी रामदेव के सिर डालकर मैं निश्चिन्त होने की चेष्टा कर रहा था । विचार-प्रवाह के साथ-साथ मेरी चाल भी बढ़ती जा रही थी ।

बीच में ही मेरी विचार-शृंखला तोड़कर रामदेव बोल उठा—अरे, अभी से ऐसा नशा चढ़ गया कि रास्ता भी भुला दिया ! उसकी बात सुनकर मैंने चौंककर देखा—जिस गली में मुड़ जाना चाहिए था, उसे छोड़कर सीधा आगे बढ़ रहा हूँ । लज्जित होकर मैं उसके पीछे हो गया ।

यह वह रात थी, जो पूर्ण कलाघर को पूरा का पूरा निगलकर भी प्रकाश के लिए राक्षसी लुधा रखती है । म्युनिस्विपैलिटी की दरिद्र लालटेन अपने ऊपर अंधकार का 'ग्लोब' चढ़ाकर टिमटिमा रही थी । ऊपर नक्षत्रों ने भी

बादलों का आवरण चढ़ा रखा था। यह कुछ बुरा न था; वरन् मेरी लज्जा ढकने के लिए यही सबसे बड़ा आधार था।

अपनी दुर्बलता दूर करने के लिए मैंने इधर-उधर से खरोच-खराँचकर शक्ति इकट्ठा की। समय के विचार से उसे दुर्बलता ही कहना चाहिए— और क्या। कृष्ण ने अर्जुन को जिस प्रकार उद्बोधित किया था, कुछ-कुछ उसी प्रकार मैं भी अपने को सशक्त करने की चेष्टा कर रहा था।

मैं आगे बढ़ता चला। सहसा मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे पीछे कोई लगा हुआ है। देखने के लिए मैंने पाँछे की ओर गर्दन मोड़ी। गली के उस घोर अन्धकार में दीखने को क्या था? फिर भी न जाने क्यों मुझे अनुभव हुआ कि मेरी स्वर्गीया माता अन्धकार के परदे में छिपी-छिपी मेरे पीछे आ रही है। मेरा सारा शरीर कण्टकित हो उठा।

रामदेव ने फिर चुटकी ली। बोला—भाई, मुझसे छिपाकर चुनचाप मन के लड्डू क्यों उड़ा रहे हो? सच्चे लड्डू अभी तो सामने आये जाते हैं!

अपनी चिन्ता दूर करने के लिए मैं उससे बातें करने लगा। मैं स्वयं नहीं सोच सकता था कि क्या कहना चाहिए; अतएव यदि उन असंबद्ध बातों को यहाँ न लिखूँ, तो आशा है, साहित्य की बहुत बड़ी हानि न हो जायगी।

अब हम लोग उस गली में आ पहुँचे, जहाँ हमें जाना था—जहाँ नित्य-प्रति धौवन और श्री का विसर्जन होता रहता है। नीचे के खण्ड की दुकानें प्रातःकालीन नक्षत्रों के जैसी हो रही थीं; परन्तु ऊपर की दुकानों में अभी जाग्रति का श्रीगणेश ही हुआ था। अच्छा श्रीगणेश हुआ था! एक जगह से नूपुरों की झंकार आ रही थी, तो दूसरी जगह से मादक सगात-लहरो। एक ओर से सुन्दरी का मधुर हास्यालाप सुन पड़ता था, तो दूसरी ओर से किसी मद्यप का असंबद्ध कंठ-स्वर। मैंने समझा कि इस पाप-प्रीतिका में अकेला मैं ही नहीं हूँ। मेरा साथ देने के लिए यहाँ एक-से-एक बढ़कर मिल सकते हैं।

रामदेव रुककर खड़ा हो गया। बोला—अब हम यथास्थान आ गये। देखो, इन्हीं सीढ़ियों से हम ऊपर के स्वर्ग में पहुँचेंगे; परन्तु ज़रा ठहरो। पास

की इस दूकान से पान ले लूँ । और हाँ, फूल भी । शुभ स्थान में बिना 'पत्र-पुष्प' के जाना ठीक भी नहीं है ।

पाजी की कुटिल हँसी देखकर मेरे हाड़ जल उठे । वह आगे बढ़ गया । मैं वहीं खड़ा रहा ।

दूकान सामने थोड़ी ही दूर पर थी । दूकानदार की बात मेरे कान में स्पष्ट पहुँची, यद्यपि वह धीमे स्वर में ही बोल रहा था—ये बाबू नये जान पड़ते हैं । ज्यादा तो नहीं पी गये ? वहाँ क्यों रुक गये ? यहीं बुला लो ।

दूकानदार ने ग़लत नहीं कहा था । मेरे पास दर्पण न होने पर भी मैं अपने मुँह पर स्पष्ट देख रहा था, वह भाव, जो मद्यपों का ही अपना हो सकता है । यदि मैंने मद्य-पान न किया होता, किसी तरह का भी क्यों न हो वह—तो यहाँ आज आता ही क्यों ? उधर से दृष्टि हटाकर मैंने सीढ़ियों की ओर देखा । सोचने लगा—ये सीढ़ियाँ मुझे ऊपर ले जायँगी या किसी अतल गच्छ में, जहाँ से कभी ऊपर उठ न सकूँगा ? ऊपर के कमरे में समुज्ज्वल प्रकाश उद्दीप्त हो रहा था । उसे भी देखा । इस प्रकाश में आज मेरे लिए कहीं का अन्धकार छिपा हुआ है, यह मैं निश्चय नहीं कर सका ।

मेरा माथा उत्तप्त हो उठा । मैं टोपी के भीतर हाथ डालकर धीरे-धीरे बालों पर फेरने लगा । एकाएक सनसनाता हुआ हवा का एक झोंका आया । मेरी टोपी उड़कर मेरे पैरों के पास आ गिरी ।

शिव ! शिव ! यह क्या हो गया ? मेरी यह टोपी वैसी नहीं है, जैसी सब कोई पहनते हैं । मेरी टोपी का एक इतिहास है । एक क्षण में कितनी ही बातें मेरे मस्तक में घूम गईं । जब शुरू-शुरू में खादी का मुझे शौक हुआ था, उस समय मेरी मा जीवित थीं । एक दिन जाकर मैंने उनसे कहा—मा, मैं यह चरखा लाया हूँ । जिस तरह तुम्हारे हाथ के भोजन से मेरी भूख शान्त होती है, उसी तरह तुम्हारे हाथ के वस्त्र से ही मेरे शरीर को सुख मिलेगा ! तुम सूत कात दो । मैं उसी का कपड़ा पहनूँगा । मा के काते सूत का एक ही थान बन पाया कि वे लौकिक माया-ममता छोड़कर अनन्तधाम को चली गईं । उस कपड़े का मूल्य अकिना मेरे लिए असंभव था । बहुत सोच-विचारकर मैंने उसकी टोपियाँ ही टोपियाँ बनवा डालीं । निश्चय किय

या—माता का प्रसाद हमेशा मस्तक पर धारण किये रहूँगा । इस वस्त्र के प्रत्येक तार में मैं माता के कर-स्पर्श का अनुभव किया करता था । हाय ! आज मैं ऐसा कुत्सित कृत्य करने पर उतारू हुआ हूँ कि माता का प्रसाद मेरे मस्तक से खिसककर पैरों पर लोटने लगा है । आज मुझे जो अपराध हो गया है, उसका परिहार कहाँ है, मैं इस बात का निश्चय नहीं कर सका । हाय ! मस्तक से ऊँचा स्थान कहाँ पाऊँ, जहाँ मा के प्रसाद को फिर स्थापित करके, उसके पैरों पर गिरने की खानि दूर कर सकूँ !

रामदेव हाथ में पान और माला लिये लौटकर बोला—अब चलो ।

मैंने नीचे से टोपी उठा ली थी । भाड़कर उसे बार-बार मस्तक पर लगा रहा था । रामदेव को देखते ही भभक उठा—बदमाश ! यहाँ मुझे कहाँ ले आया ? अच्छा देखूँगा !

रामदेव के मुँह पर विस्मय की एक झलक देखता हुआ मैं पागल की तरह भाग खड़ा हुआ । उस गली को पार करके बहुत दूर मैंने साँस ली । देखा, अन्धकार और भी घना हो गया है । आकाश में एक भी नक्षत्र नहीं दीख पड़ता था । परन्तु मैंने समझा—मैं अनन्त प्रकाश के बीच में आकर खड़ा हुआ हूँ ।

स्वप्न

‘महात्माजी, सुरीला की जीवन-नौका की पतवार अब मैं आपके हाथों में देता हूँ । आपकी कृपा-दृष्टि के सिवा संसार में इस दुखिया के लिए दूसरा शान्ति का साधन नहीं है ।’

‘अपनी एकमात्र कन्या को अपने समीप न रखकर आश्रम में छोड़ने के लिए विकल क्यों हो ?’

‘महात्माजी, कभी आप मेरे मित्र थे, मेरी ज़िन्दगी आपसे छिपी नहीं है । आप महान आत्मा हो ; आपने अपने जीवन में घोर परिवर्तन कर लिया है—आप तपस्वी हो । किन्तु मैं—मैं जो आज से बीस वर्ष पहले था, बिल्कुल वही हूँ । केवल इतना अन्तर हुआ है कि जिस दिन से सुरीला विधवा हुई है, मुझे अपने दुर्व्यसन नरकाग्नि के समान जला रहे हैं ।

‘महात्माजी, मैं महानीच हूँ, पापी हूँ, दुराचारी हूँ, व्यभिचारी हूँ; किन्तु मेरी पुत्री सुरीला देवी है, लक्ष्मी है, पवित्रता की प्रतिमा है। गुरुदेव, उस पर दया करो। मुझे भय है कि मुझ पामर के दुर्व्यसनों का प्रभाव कहीं उसके पुनीत विचारों को दूषित न कर दे। अब तक वह पूणनः ससार के संसर्ग में नहीं आई है। वह कवि है, और किसी और लाक में विचरण करती रहती है; किन्तु नवयौवन का विकास उसे इस पापी ससार से परिचित कराके रहेगा। देव, उसकी पवित्रता की रक्षा करो। वह विधवा है। मैं उसका पतित पिता उसकी आत्मोन्नति का इच्छुक हूँ। मेरी अन्तिम अभिलाषा है, मेरी देवी समान पुत्री देवी ही बनकर रहे।’

महात्मा ने सुरीला को आश्रम में रखना स्वीकार कर लिया।

×

×

×

महात्मा कभी बैरिस्टर थे। उनकी स्त्री लक्ष्मी ने अन्तिम समय में कहा था—‘दूसरा विवाह न करना, वरना मेरे बच्चों की दुर्गति हो जायगी। दूसरी माँ प्यार के बदले इनसे...’

कूर काल ने लक्ष्मी को अपना वाक्य पूरा नहीं करने दिया; किन्तु यह अधूरा वाक्य ही बैरिस्टर दीक्षित के हृदय पर अमर छाप डाल गया। लक्ष्मी की उन्मीलित आँखें जाने कैसी व्यथा छोड़ गई थीं, वे टूटते हुए शब्द विनय की ऐसी अनन्त सीमा का दिग्दर्शन करा गये थे कि बैरिस्टर दीक्षित ने अनेक विपत्तियों का सामना किया, किन्तु दूसरा विवाह नहीं किया। उस दिन से उनके कार्यक्रम में बच्चों का लालन-पालन और मृत लक्ष्मी के चित्र का पूजन सम्मिलित हो गया।

स्त्री के देहावसान के समय बैरिस्टर दीक्षित नवयुवक ही थे। नवीन सभ्यता, पश्चिमीय शिक्षा और पैशनेबिल सोसाइटी का रंग उनमें भी पूर्ण मात्रा में व्याप्त था। और शायद उनके वे ही पूर्व संस्कार चेष्टा करने पर भी उनके मन को चलायमान करते थे। हमेशा उनके हृदय में देवासुर-संग्राम छिड़ा रहता। कितनी ही बार आसुरी वृत्तियों ने अपनी विजय-घोषणा करने का निश्चय कर लिया; लेकिन लक्ष्मी की उन आँखों और शब्दों ने सदा उनकी रक्षा की।

समय के आगधना-हेतु स्त्री-जाति से सर्वथा दूर रहने का उन्होंने निश्चय किया। उनके कई मित्र ऐसे थे, जिनकी स्त्रियों से भी उनकी काफ़ी घनघृता थी। लक्ष्मी की मृत्यु के बाद उन लोगों ने बैरिस्टर दीक्षित को पूर्ण सदानुभूति के साथ बच्चों के लालन-पालन में सहायता भी दी; किन्तु बैरिस्टर दीक्षित ने उन लोगों की ज़रा भी परवाह न करके उनसे मिलना-जुलना तक बन्द कर दिया। वे अपने चारों ओर के वायु मंडल में अब स्त्री के नाम को भी स्थान देना नहीं चाहते थे।

बच्चों को पाननेवाली पुरानी आया से भी कह दिया गया कि अब घर जाओ; तुम्हारी पेंशन प्रतिमास मनिआर्डर द्वारा पहुँचती रहेगी। इस मामले में बैरिस्टर दीक्षित ने न आया के आसुआ की चिन्ता की, न बच्चों के मानसिक श्लेश की! हाँ, बच्चों को स्वतंत्रता थी कि जब इच्छा हो, आया के घर जाकर उससे मिल आया करें। उनके अन्य कर्मचारियों में जो सपत्नीक थे, उनके वेतन में वृद्धि के साथ उन्हें आज्ञा हुई कि अलग घर लेकर अपने परिवार का रख

यहाँ तक कि बैरिस्टर साहब ने किसी स्त्री मुक्किल का केस भी लेना लोड़ दिया। अपनी कन्या सुनीता से बोर्डिंग हाउस में मिलने तक न जाते, क्योंकि मुख्य अध्यापिका से मुलाकात किये बिना लड़कियों से मिल सकना बोर्डिंग-हाउस के नयमानुसार संभव नहीं था। छुट्टियों में सुनीता का बड़ा भाई उसे लिवा लाता, तभी पिता-पुत्री एक-दूसरे को देख सकते थे।

इस प्रकार अनेक कठिन नियमों के आचरण में वे अपने को छिपाकर रखने लगे।

×

×

×

बैरिस्टर दीक्षित अपने साथ इतनी सख्ती करने पर भी मानसिक संयम न रख पाते। हर समय मानसिक भावनाओं के साथ उनको घोर युद्ध करना पड़ता। दिन-भर किसी प्रकार विभिन्न कार्यों में चित्त को उलझाये रखते, रात में गीतापाठ के साथ निद्रादेवी का आह्वान करते, फिर भी स्वप्न में अतीत काल के हास-विलास के दृश्य अपनी छाया डाल ही जाते।

श्यामाचरण वकील के यहाँ पार्टी है। कैलाशबिहारी आग्रा की स्त्री रागिणी

आज कैसी सज-धज कर आई है। रागिणी के रूप की बराबरी करनेवाली फैशनेबिल स्त्री जगत् में दूसरी नहीं है। धानी साड़ी मुख पर कैसी खिल रही है। ऐसे स्वप्न उनके चित्त को उद्दिग्ग्न कर जाते।

बैरिस्टर साहब आफिस में कानून का अध्ययन कर रहे हैं, और बाहर बरामदे में कोई नया मुक्किल मुहरिर से गुफ्तगू करता है, तो बैरिस्टर साहब की चितेरी कल्पना सब-कुछ भुलाकर स्त्री का चित्र उनके सम्मुख खींचती। कोई सफेद साड़ी पहने विधवा होगी। पति की सम्पत्ति पर किसी ने अधिकार कर लिया होगा और अब रोटी देना भी अस्वीकार करता होगा। लाचार मुकदमे की बात सोचकर आई है। ध्वनि से भी स्त्री ही प्रतीत होती है; सकोच से धीरे-धीरे बोल रही है।

मुहरिर के द्वारा मशविरा तो दे दूंगा; किन्तु किस अपने हाथ में नहीं लूंगा। उसी समय मुहरिर कमरे में आता, बैरिस्टर साहब की निमग्नता में बाधा पड़ती; वे कुछ कम्पित हृदय से कल्पनानुसार सुनने की प्रतीक्षा करते। मुहरिर कहता—साहब, छुदम्मीलाल नामक एक मुक्किल आया है।

लजा और ग्लानि से चित्त चंचल हो उठता। वे सोचते—यह क्या है? पहले तो मेरी मानसिक स्थिति ऐसी दुर्बल नहीं थी। कुप्रवृत्तियों के पराजित करने के साधन उल्टे मुझे ही पराजित कर रहे हैं और मानसिक उन्नति के मार्ग से विमुख करके पतन के मार्ग की ओर आकृष्ट करते हैं। क्या उपाय करें भगवान् !

×

×

×

पुत्र-पुत्रियों के कर्तव्य से निवृत्त होकर बैरिस्टर दीक्षित ने संन्यास ले लिया। हिमालय की पहाड़ियों में भ्रमण करते हुए एक पहुँचे हुए महात्मा से उनका साक्षात् हुआ। उसी दिन से उनके शिष्य हो गये।

महात्मा वास्तव में एक दिव्य पुरुष थे। संसार से विरक्त होकर वर्षों उन्होंने कठिन तपस्या की थी। बहुत दिनों तक मानव-समाज से परे भयानक जंगलों और दुर्गम पहाड़ों में विचरण करते रहे थे; किन्तु अपनी साधना को सफलभूत करके अब फिर मानव-समाज के उपकार की कामना से इस ओर आ गये थे। योगिराज की इच्छा एक आश्रम बनाने की थी। जिसमें भटकते

हुए प्राणियों की शान्ति और अध्यात्मवाद का अध्ययन करने का अवसर मिले। साथ ही निर्धनों के लिए एक चिकित्सालय भी खोलना चाहते थे। उन्हें अनेक संजीवनी जड़ी-बूटियों का ज्ञान था।

बैरिस्टर दीक्षित ने अपनी सम्पत्ति का आधा भाग देकर योगिराज की इच्छा पूरी की और स्वयं भी उनके साथ आश्रम में रहकर सेवा और उपासना में तन्मय हो गये।

योगिराज की कृपादृष्टि से उन्हें पूर्ण शान्ति भी प्राप्त हुई, और थोड़े ही दिनों में कठिन अभ्यास और तपस्या के द्वारा वे एक महान् तपस्वी बन गये। योगिराज के अनेक शिष्यों में बैरिस्टर दीक्षित का स्थान सर्वप्रथम था। चारों ओर उनकी ख्याति फैल रही थी। उन पर भी लोगों की श्रद्धा-भक्ति उनके गुरु से कम न थी।

योगिराज के शरीर छोड़ देने पर आश्रम ने गुरुदेव के पद के योग्य बैरिस्टर दीक्षित को ही समझा और उसी दिन से उन्हें महात्मा की पदवी भी मिल गई। अब वे बैरिस्टर दीक्षित नहीं, एक प्रसिद्ध महात्मा थे !

×

×

×

सुरीला को आश्रम की सीढ़ियों पर बिठाकर उसके पिता गुरुदेव के दर्शन करने गये थे। सुरीला सुदूर तक गंगा की उज्ज्वल जलधारा का अवलोकन करती हुई अपने विचारों में निमग्न थी—पिता मुझे संन्यास लिवाना चाहते हैं; कहते हैं, इन महात्मा की कृपा से मुझे कृष्ण भगवान् के दर्शन हो जायेंगे, मुझे शान्ति मिलेगी ! जिन नटनागर के स्वप्न में अपनी कविताओं में अंकित करती रहती हूँ, उनके दर्शन पाने से बढ़कर और क्या सौभाग्य हो सकता है, किन्तु पिता से विलग होना भी तो आसान नहीं है। और आप अन्दर अशान्ति तो मुझे कुछ प्रतीत होती नहीं। लोग मुझे दुःखिया समझकर मुझ पर करुणा का भाव दिखलाते हैं, मेरे दुःख पर आँसू बहाते हैं; पर मैं तो बहुत सुखी हूँ। पिता मुझे कितना प्यार करते हैं !

मेरे मा नहीं है, भाई-बहन भी नहीं हैं, मैं अकेली हूँ; लेकिन यह अकेलापन अब तक तो कुछ अखरता नहीं है। कितने तो काम हैं, मुझे यह सोचने की फुर्सत हो कब मिलती है कि मैं अकेली हूँ।

पति के मैंने दर्शन ही नहीं किये । कभी-कभी मन दुखी अवश्य होने लगता है । मेरा विवाह पिता ने इतनी छोटी उम्र में क्यों कर दिया ? विला-यत जाते समय पतिदेव मुझसे मिलने आये थे ; पर लजावश मैं उनके समीप गई ही नहीं । वे नाराज़ होकर प्रातः ही चले गये, और विदेश ही में उनकी मृत्यु हो गई । यह ख्याल अवश्य हृदय को ठेस पहुँचाता है ।

पिता को छोड़कर मैं यहाँ कैसे रहूँगी ? यह आश्रम तो मेरे घर जैसा भी नहीं है । गंगा का किनारा होने से कुछ सुहावना अवश्य जान पड़ता है । मुझे यहाँ फुलवारी लगाने को कहाँ मिलेगी ? कविताएँ भी शायद ही लिख सकूँ । महात्मा की आज्ञा पर ही तो चलना होगा न ।

और फिर पिताजी को कितना कष्ट होगा ? अधियाले ही चाय पीते हैं । कोई नौकर भी इतना सबेरे न उठ सकेगा । और मेरी मैना मुझे न देखकर व्याकुल हो जायगी । मदनगौर बिना मेरे खिलाये आधा चारा भी नहीं खायगा ।

कहीं नौकरोँ ने संध्या समय कबूतरों को बंद नहीं किया, तो उन्हें बिल्ली खा जायगी । मेरे पीछे मेरी फुलवारी उजड़ जायगी । मेरी सारी चिड़ियाँ मर जायँगी । मिसरानी के बनाये खाने से पिताजी का पेट भी नहीं भरेगा । वे और भी दुबले हो जायँगे, खाँसी भी बढ़ जायगी ।

संभव है, हर समय शराब ही पीते रहें । अभी तो मैं बहुत देर तक उन्हें बातों में लगा लेती हूँ ; ताश खेलती हूँ, गाना सुनाती हूँ और संध्या को चिड़ियाखाने की सैर कराती हूँ । फिर संध्या से ही बोतल लेकर बैठ जाया करेंगे । परमात्मा, क्या होगा ? मैं तो चुपके से शराब में पानी मिला देती हूँ, मेरे पीछे खालिस शराब की पूरी बोतल ही पी गये, ता फिर मुँह से खून गिरने लगेगा । कुछ भी हो, मैं यहाँ नहीं रहूँगी । मेरे पिता शराब पीते हैं, तो क्या हुआ ! उनके बराबर मेरे लिए कौन हो सकता है ? कौन मुझे वैसा प्यार करेगा ? मैं यहाँ किसी प्रकार भी नहीं रहूँगी; किन्तु पिता को कैसे समझाऊँ ? वे नाराज़ हो जायँगे, दुखी होंगे । सोचते-सोचते सुरीला के सुन्दर नेत्रों से बड़े-बड़े मोती-जैसे आँसू टपकने लगे ।

महात्मा का शिष्य शेखर स्नान करके आ रहा था । दूर से सुरीला उसे

श्वेत संगमरमर की प्रतिमा-सी जान पड़ी। सीढ़ी पर वह ठिठक गया—कोई दुखिया है, रो रही है। उसने मीठी वाणी में पूछा—देवी, रोती क्यों हो ? क्या मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ ?

सुरीला पुरुषों के संसर्ग में नहीं रही थी ; लेकिन प्रकृति से ही वह निर्भीक थी। लज्जा के वातावरण में वह पड़ी ही न थी। उसने बालकों की भाँति आँसू पोछते हुए पूछा—तुम महात्मा के पुत्र हो ?

‘मैं महात्माजी का शिष्य हूँ। वे मुझ पर पुत्र की भाँति स्नेह करते हैं।’

‘तो तुम कुछ न कर सकोगे ; इसी आश्रम के हो न ?’

‘आश्रमवासी होने से क्या हुआ ? कुछ कदो भी तो। संभव है, मैं तुम्हारा कुछ उपकार कर सकूँ। हम लोगों का ध्येय ही तो परोपकार है।’

सुरीला ने क्षण-भर पहले सोची हुई सारी बातें शेखर को सुना दीं, और बोली—क्या अब तुम मेरे पिता से सिकारिश कर सकोगे ? यों तो मेरे पिता मेरी प्रत्येक इच्छा पूरी करते हैं ; मगर उनका विचार जम गया है कि इस आश्रम में रहने से मेरा कल्याण होगा।

शेखर ने अत्यन्त मधुर शब्दों में सुरीला के पिता के विचारों का समर्थन किया और अनेक प्रकार से सान्त्वना देते हुए उसने कहा—इसमें क्या दर्ज है ? पिता के आज्ञानुसार कुछ दिन यहाँ रह देखो। यदि मन न लगे, तो चली जाना। यहाँ किसी प्रकार का बन्धन थाड़े ही है। तुम्हारी स्वतन्त्रता में भी बाधा नहीं पड़ेगी। अपने इच्छानुसार कविता भी कर सकोगी, कुतुबारी में विचरण भी कर सकोगी। यहाँ शिक्षा आदि के अनेक साधन हैं। चलो, तुम्हें यहाँ का पुस्तकालय और चित्रशाला दिखा लाऊँ। यहाँ तुम चित्रकला, चिकित्सा, संगीत-कला आदि का भी अध्ययन कर सकती हो।

सुरीला को यह जानकर बहुत सान्त्वना मिली कि शेखर भी कवि है। यहाँ उसे सहानुभूति भी मिल सकती है। शेखर के शब्दों में जाने कैसी मोहनी थी कि सुरीला आश्रम में रहने को तैयार हो गई।

पिता शीघ्र शीघ्र आने का वादा करके चले गये।

×

×

×

सुरीला और शेखर में मित्रता हो गई। आश्रम में स्त्री पुरुषों के परस्पर

मिलने-जुलने के लिए कोई खास नियम नहीं था । सबको पूर्ण स्वतंत्रता थी । दोनों आश्रम के कार्य, पूजा-उपासना आदि से निवृत्त होकर कलकल-नादिनी गंगा के तट पर बैठकर कविता लिखते, कभी वार्तालाप करते और कभी अध्यात्मवाद का विषय लेकर वाद-विवाद करते । दोनों के विचारों में किसी प्रकार की भी अपवित्रता नहीं थी । वे यथाशक्ति गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलते । गुरु के उपदेशानुसार ही अध्ययन, उपासना तथा अभ्यास करते ।

किन्तु गुरु को यह मैत्री खटकी । एक नवयुवक और नवयुवती का इस प्रकार हर समय का साथ, एक का दूसरे के प्रति इतना अनुराग, उचित नहीं है । संयम में विघ्न पड़ सकता है । शेखर अभी अभ्यास ही कर रहा है, तपस्वी नहीं बन पाया है, और सुरीला को तो आश्रम में प्रविष्ट हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं । गुरुदेव ने अपने ये विचार किसी पर प्रकट तो नहीं किये ; पर इन दोनों पर कड़ी दृष्टि रखना प्रारंभ कर दिया ।

उन्होंने शेखर से कहा—पुत्र, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ । भगवान् तुम पर शीघ्र प्रसन्न होंगे । अब वह समय आ गया है कि तुम कुछ दिनों तक एकान्तवास में तपस्या करो । एक सप्ताह बाद तुम्हें एक पहाड़ की कन्दरा में जाना होगा ।

शेखर ने मस्तक नत करके गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की । गुरु ने सुरीला का स्थान नीचे से बदलकर छत पर अपने कमरे के समीप एक स्थान दे दिया । सुरीला के मन में शंका हुई—क्या गुरु मेरे ऊपर सन्देह करते हैं ?—किन्तु उसने स्वयं ही अपने विचार की निन्दा की और गुरु की श्रद्धा-भक्ति ने किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने दिया ।

उस दिन रजनी दुग्ध-स्नान कर रही थी । उसके शरीर से दुग्ध-धारा ने बहकर सारी प्रकृति को श्वेत बना दिया था । उसी श्वेत वातावरण में हरी घास की सुकोमल शय्या पर बैठे सुरीला और शेखर वार्तालाप कर रहे थे । शेखर ने कहा—सुरीला, गुरुदेव की आज्ञा से अब मैं एक मास के लिए एकान्तवास करने जाऊँगा ।

सुरीला पर वज्रपात हुआ । उसे ऐसा जान पड़ा, मानो हृदय की घड़कन

बन्द हुई जाती है। वेदना उसके हृदय की मसलने लगी। वह भयभीत हिरणी की नाईं छलकते आसुओं से शेखर का मुँह निहारती रह गई।

सुरीला की यह दशा देखकर शेखर का मन भी जाने कैसा होने लगा ; किन्तु उन्होंने हृदय को दृढ़ करके कहा—घबराती क्यों हो ! शान्ति से चित्त को एकाग्र करके रहो। गुरु के उपदेशों पर मनन करना, तुम्हारा चित्त सावधान हो जायगा।

सुरीला ने कहा—शेखर, तुम चले जाओगे, तो मैं किसी प्रकार भी यहाँ न रह सकूँगी ! मुझे पिता के यहाँ पहुँचा दो।

‘नहीं, सुरीला, इतने दिनों के अभ्यास को इस प्रकार न तोड़ो। मैं गुरुदेव से प्रार्थना करूँगा कि वे अब तुम्हें अधिक समय दें। गुरु के उपदेशों से तुम्हें शान्ति मिलेगी।’

घबराकर सुरीला ने कहा—नहीं, शेखर ऐसा न करना; बल्कि गुरु से कहो, मुझे भी एकान्तवास की आज्ञा दें।

‘ऐसा तो नहीं हो सकेगा, सुरीला ! गुरुदेव तुम्हें एकान्तवास में जाने की आज्ञा नहीं देंगे। अभी तुम उस कठिन तपस्या में सफल न हो सकोगी।’

‘शेखर, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मुझे क्षमा करना शेखर, गुरु से मुझे एक प्रकार का भय लगता है। उनसे अधिक मुझे तुम पर...’

बीच ही में बात काटकर शेखर ने ताड़ना के शब्दों में कहा—कैसी बातें करती हो, सुरीला ! गुरुदेव पर भक्ति करो।

काँपते हुए स्वर से सुरीला ने कहा—शेखर, मैंने अनेक बार देखा है, गुरु छिपकर हम दोनों की बातें सुनते हैं।

‘तो दोष क्या है ? हम लोगों पर दृष्टि रखना गुरु का कर्तव्य है।’

सिसकते हुए सुरीला बोली—इतना ही नहीं, शेखर, रात्रि में मुझे कई बार शुवदा हुआ, किवाड़ की दरार में से कोई मेरे कमरे में भाँकता है। तुमने जो अपना चित्र बनाकर मुझे दिया था, वह मेरे कमरे से कोई चुराकर ले गया। मुझे यह काम गुरु का ही जान पड़ता है। मैं यहाँ नहीं रहूँगी, या फिर तुम कुछ दिनों के बाद जाना।

सुरीला सिसक-सिसककर रोने लगी। क्षण भर मौन रहने के बाद उसने शेखर से कहा—शेखर, मेरा मन तुमसे भय नहीं खाता है।

इस सरलता पर शेखर ने हँस दिया। और इस समय इस प्रसंग को भुजाने के लिए उसने कहा—आओ, कुछ देर रामायण का पाठ करें।

×

×

×

सुरीला रामायण गाने लगी। शेखर आधा लेटा हुआ सुनने लगा। पुष्पवाटिका का मनोरम प्रसंग चल रहा था। दोनों तुलसीदास के भक्तिसर का स्वाद ले रहे थे, बिल्कुल रामायण में तन्मय थे।

और गुरु! गुरु छत की खिड़की पर आधी रात में दोनों के बीच का भेद लेने बैठे थे। जाग्रत अवस्था में ही गुरु को स्वप्न-सा भान हुआ—यह सुरीला कितनी ही सुन्दर है, मानो सौन्दर्य स्वयं देवीरूप में प्रकट हुआ है। रागिणी का रूप इसकी छाया के बराबर भी न था।

गुरु चौंक पड़े। आज वर्षों बाद अतीत काल की स्मृति क्यों दिलोरे लेने लगी? 'हरिः ओ३म्' उच्चारण करके गुरु ने आकाश पर हँसते हुए चन्द्रमा को देखा और फिर क्षितिज पर बैठी हुई सुरीला पर दृष्टि डाली। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो चन्द्रमा का कुछ भाग टूटकर सुरीला बन गया है। उन्हें प्रतीत होने लगा कि भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्यदृष्टि प्रदान की है। सुरीला चन्द्रमा का अंश ही नहीं, रामायण की सीता भी है, विष्णु की लक्ष्मी भी है, कृष्ण की राधिका भी है और कामदेव की सौन्दर्यवती रति भी है। गुरु बेसुध होकर, भक्तिसागर में डूबकर, राधा, लक्ष्मी, सीता के दर्शनार्थ पान करने लगे।

इस समाधिस्थ अवस्था में कितना समय व्यतीत हो गया, गुरु जान ही न सके। कुक्कुट ने मदमाती बाँग से ऊषा के आगमन की सूचना दी, तो शेखर ने कहा—सुरीला, उठो, आज आश्रम की धुलाई करने की हम लोगों की पारी है। मैं पानी लाता हूँ; तुम चलकर पहले गुरुदेव का कमरा झाड़ दो।

गुरु खिड़की पर सर रखे निद्रा में निमग्न थे। यह समय तो उनका वायु-सेवन के लिए आश्रम से बाहर जाने का है। सुरीला झाड़ू लिये गुरु के जागने की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी रही। गुरु मनोरंजक स्वप्न देख रहे थे—

वृन्दावन विजन वन में चन्द्रदेव पूर्ण कलाओं से शोभायमान हैं। मन मुग्धकारी रजतचन्द्रिका विपिन को सौरभ दान कर रही है, और उसी विमल चाँदनी की शय्या पर सौ चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करनेवाले भगवान् कृष्ण दाहिने कर में मुरलिका लिये नृत्य कर रहे हैं, और उनके बायें पार्श्व में प्रियतमा राधिका शोभा पा रही है।

अनेक देवताओं के साथ गुरु भी विमान पर बैठे पुष्प-वर्षा कर रहे हैं। भक्तवत्सल भगवान् कृष्ण ने मुरलीका ऊपर उठाकर गुरु को समीप आने का संकेत किया। भक्ति में उन्मत्त होकर गुरु विमान से कूद पड़े और भगवान् ने उन्हें अपने में लीन कर लिया। अब भगवान् कृष्ण और गुरु जुदा नहीं थे।

फिर एक बार राधिका के मुख पर दृष्टि डालकर मुरलीमनोहर ने कहा— प्रिये, संसार में तुम सुरीला था और मैं महात्मा था। अभी मृत्युलोक में फिर चलकर प्राणियों का उद्धार करना है।

इतना कहकर भगवान् पूर्ण गति से नृत्य करने लगे। रासलीला समाप्त कर वे राधिका को लेकर फिर संसार में चले आये। अभी पृथ्वी का पूर्णोद्धार नहीं हुआ था।

राधिका बोली—प्राणेश, क्या मुझे अभी और विलग रहना हाँगा ? इस बार की जुदाई तो सीता-वनवास से भी अधिक हो गई, देव !

कृष्ण ने राधिका को आलिगन कर लिया और बोले—नहीं प्रिये, अब हम-तुम साथ रहकर ही पृथ्वी का उद्धार करेंगे।

जागकर भी गुरु को चेतना नहीं हुई। उन्मत्त की भाँति सुरीला का हाथ पकड़कर बोले—राधिका, प्रिये...

सुरीला गुरु का हाथ भटककर चीखती हुई भागी—मुझे बचाओ, शेखर !

शेखर जल की बाट्टी लेकर सीढ़ियाँ पार कर चुका था। यह दृश्य देखकर अप्रतिभ-सा रह गया। उसी समय सुरीला बिजली की भाँति टूटकर उसके पैरों के समीप गिर पड़ी। बाट्टी की कोर माथे में मुक्त हुई और खून की धारा बह निकली।

बेसुध-सी सुरीला को गोद में लेकर शेखर आश्रम से बाहर हो गया।

सारे आश्रम में कोलाहल मच गया । धटना का पता लगाने के लिए आश्रम-वासी गुरु के समीप गये ; लेकिन दरवाजे बन्द थे । सबों ने समझा, गुरु समाधि में हैं । शेखर ने बिना कुछ कहे ही साथियों से विदा माँग ली ।

×

×

×

पिता से चिमटकर सुरीला खूब रोई । पिता भी रोने लगे ।

‘अच्छा किया, आ गई सुरीला ! अब मेरा अन्तिम समय निकट जान पड़ता है ।’

बात करते-करते उनके मुँह से लाल-लाल रक्त बहने लगा । शेखर उपचार में लग गया । सुरीला और भी बिलख उठी—मुझे अपने से जुदा करके तुमने अपनी क्या गति कर ली पिताजी !

×

×

×

नौकर ने शेखर के नाम एक पत्र लाकर दिया—

‘शेखर, सुरीला ने मेरी आँखें खोल दीं । मैं भ्रम में था । जिसे अब तक स्वप्न समझा था, वास्तव में हकीकत थी, और जिसे हकीकत समझा था, वही स्वप्न था । मुझे अपने मार्ग का दिग्दर्शन अब हुआ । मैं जाता हूँ और आश्रम का भार तुम दोनों पर छोड़ता हूँ । तुम सुरीला से विवाह कर लो, तुम्हारा कल्याण होगा । मानुषिक प्रेम द्वारा ही तुम्हें दिव्य प्रेम का परिचय मिलेगा । प्रवृत्तियों के दमन करने से नहीं, बल्कि उन्हें आध्यात्मिक रूप में परिवर्तित करने से ही वास्तविक शान्ति की प्राप्ति होगी । यही तुम्हारे गुरु का अन्तिम उपदेश है ।’

शत्रु

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिये, और कहा—ज्ञान, मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है । उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो ।

ज्ञान जाग पड़ा । उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है और मानव-जाति उस अन्धकार में पथभ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही

है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, उसका नेता बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सबको सुनाकर कहने लगा—मैं मसीह हूँ, पैगम्बर हूँ। भगवान् का प्रतिनिधि हूँ। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक सन्देश है।

लेकिन किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। कुछ उसकी ओर देखकर हँस पड़ते; कुछ कहते, पागल है; अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो ! और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

×

×

×

आखिर तम आकर वह एक अंधेरी गली में छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानव-जाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के करुण क्रन्दन की आवाज़ सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक बहुत छोटा-सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा—बहन, क्यों रोती हो ?

उस स्त्री ने कहा—मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था। जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भूख से मर रहा है।

ज्ञान का निश्चय और दृढ़ हो गया। उसने कहा—तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।—और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार शुरू किया। उसने कहा—धर्म भूटा बन्धन है। परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग रखता है, अतः शत्रु है !

लेकिन किसी ने कहा—जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृत औरत को अपने साथ रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें ? वह समाज से पतित है, नीच है।

तब लोगों ने उसे समाजच्युत करके बाहर निकाल दिया ।

× × ×
ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने के पहले समाज से लड़ना है । जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खंडन नहीं हो सकता ।

तब वह इसी प्रकार प्रचार करने लगा—वह कहने लगा—ये धर्मध्वजी, ये पुंगी-पुरोहित, मुल्ला, ये कौन हैं ? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन का बाध रखने का ? आओ, हम इन्हें दूर कर दें, एक स्वतंत्र समाज की रचना करे, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ़ सकें ।

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गये, क्योंकि वह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था ।

× × ×
ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था । यही तां हमारी लुद्रताओं को स्थायी बनाये रखते हैं, और लाभ उठाते हैं । पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब... और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा ।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया । वह मैले-कुचैले, फटे-पुराने खाकी कपड़े पहने हुए था । मुख पर सुरियाँ पड़ी थी, आँखों में एक तीखा दर्द था । उसने ज्ञान से कहा—आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोज़ी कमा सकूँ । मैं विदेशी हूँ । आपके देश में भूखा मर रहा हूँ । कोई भी काम मुझे दे, मैं करूँगा, आप परीक्षा ले । मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है ।

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा—मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूँ ।

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया । बोला—अच्छा, मैं आपके दुःख से बहुत दुःखी हूँ । मुझे अपना भाई समझें । यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है । परमात्मा आपकी रक्षा करे । मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ ?

×

×

×

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो यह भूख ही है, पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा...

और उसने ‘भूख के लड़ाकों’ का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश्य था अमीरों से धन छीनकर सबमें समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना इत्यादि; लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़वा मँगाया और एक पहाड़ी किले में कैद कर दिया। वहाँ एकान्त में वे उसे सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्ञानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ-सा जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश हूँ कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असंभव है? यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना खूँझा, कितना बेमानी!

एक दिन वह किले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एकदम से विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूदकर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौटकर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो; मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ; लेकिन ऐसे संसार में मेरा स्थान नहीं है।

वह स्थिर-मुख दृष्टि से खाई के पानी में देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रतिबिम्ब भक्तक रहा है और मानो कह रहा है—बस, अपने आपसे लड़ चुके!

×

×

×

ज्ञान सहमकर रुक गया; फिर धीरे धीरे दीवार पर से नाँचे उतर आया और किले में चकर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।

एक सप्ताह

गुलमर्ग

१३ श्रावण...

प्यारे कमल,

मुझे माफ़ करना, उस दिन शाम की चाय के समय तुम मेरा इन्तज़ार करते रहे होगे, और मैं इधर खिसक आया। आज तुमसे ११०० मील की दूरी पर और तुम्हारे कलकत्ता महानगर से ६००० फ़ीट अधिक ऊँचाई पर बैठकर मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम जानते ही हो कि मैं किस तबीयत का आदमी हूँ। उफ़, वहाँ कितना बोझ था। काम, काम, हर वक़्त काम। मेरी तबीयत सहसा ऊब गई और तुम्हें तक सूचना दिये बिना मैं अपनी कार पर इतने लम्बे सफ़र के लिए खिसक आया। उस दिन चाय के वक़्त मुझे मौज़ूद न पाकर यद्यपि तुम मुझ पर काफ़ी खीझ तो लिये ही होगे, फिर भी उस असुविधा के लिए मुझे माफ़ कर देना।

हिमालय की यह विशाल घाटी बड़ी सुहावनी है। घने जंगल, निर्मल झरने, विस्तृत मैदान, चारों ओर बरफ से ढके पहाड़ों की ऊँची-ऊँची चोटियाँ और दूर पर दिखाई देनेवाली वलर भील। इस स्थान से मैं सचमुच प्यार करता हूँ। यह एक सप्ताह बिल्कुल निकम्मा रहकर काटूँगा। कुछ नहीं करूँगा! केवल तुम्हें ही पत्र लिखूँगा और तुम्हारे पत्रों को छोड़कर और कुछ भी नहीं पढ़ूँगा।

भाई कमल, मैं अकेला हूँ। तुमने अनेक बार मेरे इस अकेलेपन की आलोचना की है; मगर यहाँ आकर मैं अनुभव करता हूँ कि जैते प्रकृति मेरी माँ है। मैं प्रकेला कहाँ हूँ, मैं तो अपनी माँ की गोद में हूँ।

चिन्ता न करना। मैं यहाँ एक सप्ताह से अधिक नहीं टहरूँगा। २२ श्रावण की शाम को तुम मुझे अपनी चाय की टेबल पर ही पाओगे।

बाहर एक कसा हुआ घड़ा मेरा इन्तज़ार कर रहा है, अतः बाकी कल।

तुम्हारा—

स०

[२]

गुलमर्ग

१४ आवण...

भाई कमल,

सुबह ६ बजे बिस्तरे से उठा हूँ। अभी तक नींद की खुमारी नहीं टूटी। कल बहुत दिनों के बाद घुड़सवारी की थी, अतः टाँगें कुछ थक गई-सी प्रतीत होती हैं। आज कहीं नहीं जाऊँगा। मेरे मकान में और कोई नहीं है। मैं अपने सोफ़े पर अकेला पड़ा हूँ। घीमी-घीमी वर्षा हो रही है। चारों तरफ सन्नाटा है। ओह, सामने की इस खिड़की से कितना अनन्त सौन्दर्य मुझे दिखाई दे रहा है।

आज कुछ नहीं लिखूँगा। सोचा था कि आज एक चित्र बनाऊँगा; मगर कुछ नहीं करूँगा। घंटों तक इसी तरह निश्चेष्ट भाव से पड़े रहकर इस खिड़की की राह से प्रकृति का, अपनी मा का अनूठा सौन्दर्य देखूँगा।

अच्छा, कल तक के लिए विदा।

स्वेच्छाधीन—

स०

[३]

गुलमर्ग

१५ आवण...

कमल,

इस समय रात के ११:॥ बजे हैं, और मेरी आँखों में नींद नहीं है। सब तरफ गहरा सन्नाटा है। कहीं से कोई आवाज़ नहीं आ रही है। मेरे कमरे में बिजली की बत्ती जल रही है। खिड़कियाँ बन्द हैं। सरदी इतनी अधिक है कि मैं उन्हें खोलकर नहीं रख सका। सन्नाटा इतना गहरा है कि बिजली के प्रकाश से जगमगा रहे इस कमरे में बैठकर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है, जैसे इस संपूर्ण विश्व में केवल मैं-ही-मैं बच रहा हूँ, और कोई भा नहीं है। कहीं कोई भा नहीं है। सिर्फ मैं ही हूँ; अकेला मैं।

मगर भाई कमल, आज सहसा, न जाने क्यों, मुझे अगता यह अकेलापन

कुछ अनुभव-सा होने लगा है । ऐसा क्यों हुआ ! क्या सिर्फ़ इसलिए कि सब ओर सजाटा है और मेरी आँखों में नींद नहीं है ! नहीं कमल, यह बात नहीं है । मेरे हृदय में आज सहसा एक नई-सी अनुभूति उठ खड़ी हुई है, जो बिल्कुल धुँधली और अस्पष्ट-सी है । मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने आज जो कुछ देखा है, उसमें विचित्रता ज़रा भी नहीं है । मैंने जो कुछ आज देखा है, उसे यदि मैं यहाँ लिखूँगा, तो या तो तुम मेरा मज़ाक उड़ाने लगोगे, अथवा मेरे संबन्ध में बिल्कुल भ्रान्त-सी धारणा बना लोगे । मगर भाई, मैं कहता हूँ, मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम इन दोनों में से एक भी बात न करना । मेरी इस चिट्ठी को पढ़ जाना, और अगर हो सके तो उसी वक्त भुला देना । बस, और कुछ नहीं ।

हाँ; तो सुनो । बात है तो कुछ भी नहीं; मगर फिर भी सुनो । आज दोपहर के वक्त बादल ज़रा हँट गये थे, और सूरज निकल आया था । जैसे विधाता ने इस हरी-भरी घाटी को धो-धाकर धूप में सुखाने के लिए बिछा दिया हो । दोपहर के भोजन के बाद अपनी इस छोटी-सी कोठी के खुले सहन में धीरे-धीरे चदल-क्रदमी करने लगा । सहन के फाटक के सामने ही स्वच्छ जल का एक छोटा-सा झरना बह रहा है । उसके ऊपर अनघड़ लकड़ी का एक इतना सुन्दर पुल है कि उसे देखते ही कलरबकस लेकर उसका चित्र बनाने की इच्छा होती है । मैं धीरे-धीरे एक बार इस पुल तक जाता था, और उसके बाद कोठी के बरामदे तक वापस लौट आता था ।

एक बार के चक्कर में जब मैं पुल के निकट पहुँचा; तो मैं चौंक पड़ा । मैंने देखा, वहाँ किसी भद्र बुल की एक नौजवान लड़की खड़ी थी, अकेली । उसका ध्यान मेरी ओर नहीं था । झरने के पानी की मधुर ध्वनि ने मेरे चलने की आवाज़ को अपने भीतर छिपा लिया था, इससे मेरे बहुत निकट पहुँच जाने पर भी वह यह न जान सकी कि उसके निकट कोई अन्य व्यक्ति भी मौजूद है । और मुझे तो तुम जानते ही हो । कितना भूला हुआ-सा चलता हूँ । मुझे तब तक उस लड़की की उपस्थिति का ज्ञान नहीं हुआ, जब तक मैं उसके बिल्कुल निकट पहुँच नहीं गया ।

मैं चौंका, और उधर उसी समय उस लड़की की निगाह मुझ पर पड़ी।

शायद बिल्कुल ही अकस्मात् । वह भी चौंक गई । क्षण-भर के लिए ससहा उसकी और मेरी आँखें आपस में मिल गई ।

बस, भाई कमल, बात इतनी ही है, और कुछ भी नहीं । मैं उसी क्षण वापस लौट पड़ा था, और जान पड़ता है, वह लड़की भी वहाँ से चल दी थी ; मगर इस ज़रा-सी बात ने न-जाने क्यों मेरे दिल पर बहुत अजीब-सा प्रभाव डाला है । इस बात को हुए अब ६ घण्टे बीत चुके हैं, और इन ६ घण्टों में चौंकी हुई हरिणी की-सी ये आँखें मेरे मानसिक नेत्रों के सामने बीसियों बार घूम गई हैं ।

तुम सोचते होगे, इस सबमें कोई खास बात ज़रूर है । और नहीं तो कम-से-कम वह लड़की कोई असाधारण सुन्दरी तो अवश्य ही होगी ; मगर वास्तविकता यह नहीं है । उस लड़की के चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं थी । लम्बा क़द, मामूली चेहरा, गेहुँआँ रंग । और भी कोई बात उसमें ऐसी नहीं थी, जिसे असाधारण कहा जा सके । अपने नगर में हमलोग इस कन्या से अत्यधिक रूप-सौन्दर्यवाली बीसियों युवतियों को रोज़ देखते हैं । मेरी परिचित कुमारियों में भी कितनी ही सौन्दर्य की दृष्टि से उससे कहीं बड़-चढ़कर हैं । यहाँ गुलमर्ग में भी उससे बहुत अधिक सुन्दरियों को मैंने काफ़ी बड़ी संख्या में देखा है । फिर भी ! कुछ समझ में नहीं आता कि इस 'फिर भी' का कारण क्या है ।

आज इतना ही ।

तुम्हारा—

स०

[४]

गुलमर्ग

१६ श्रावण...

प्रातः ८ बजे

कमल,

नींद से उठते ही सबसे पहले मेरी निगाह रात के पत्र पर गई है । रात में क्या खुराफ़ात-सी लिख गया । दिल में आता है, वह पत्र फाड़ डालूँ ।

जी कुछ भारी-सा है । कुछ लिखने की भी इच्छा नहीं होती । और इस तरह निश्चेष्ट भाव से यहाँ चुपचाप पड़े रहना तो आज मुझे सख्य भी नहीं हो सकता । तुम जानते हो, ऊपर की दो लाइनें लिखने में मैंने कितना समय लगाया है ! पूरे २२ मिनट । इस समय दूसरा पत्र लिख सकना मेरे लिए असंभव है । चलो, अब कहीं आवागमन करने जाऊँगा ।

सायं० ६ बजे ।

मेरा जी इस समय बहुत प्रसन्न है । मेरी टाँगें, मेरा संपूर्ण शरीर बिल्कुल थकी हुई हालत में है ; परन्तु जी चाहता है कि मैं इस समय भी नाचूँ, कूँ और इधर-उधर दौड़ता फिँलूँ । मेरे हृदय में इस समय उत्साह का अन्धड़-सा चल रहा है, मुझे मालूम है कि उसकी प्रतिक्रिया भी जरूर होगी । अपने जी के इस व्यर्थ उत्साह को बहकाने का मुझे इससे बढ़कर और कोई उपाय नहीं मिला कि सुबह का पत्र पूरा करने बैठ जाऊँ ।

सँभ हो आई है । आज का सारा दिन मैंने सैर-सपाटे में काटा है । थोड़ी ही देर पहले घर वापस आया हूँ । तुम्हारी चिट्ठी बीच में छोड़कर मैं एक मज़बूत घाँड़े पर सैर के लिए निकल गया था । यहाँ के सभी मार्ग मेरे जाने-पहचाने हैं, इससे कोई मार्ग-दर्शक भी मैंने अपने साथ नहीं लिया था । मेरे निवास-स्थान से करीब ८ मील की दूरी पर एक बड़ा पहाड़ी भरना है । इस भरने को यहाँ 'निगली नाला' कहते हैं ; मैं आज इसी निगली नाले तक गया था ।

खूब टेढ़ी-मेढ़ी राह है । कहीं पहाड़ों के चकर हैं, कहीं घास से मड़े मैदान, कहीं ऊँचाई-निचाई, कहीं पेचदार मोड़ और कहीं घने जंगल । रास्ता क्या है, ऊबड़-खाबड़-सी एक पगडंडी है । पर मैंने अपना घोड़ा खूब निश्चिन्ती के साथ दौड़ाया । ऊपर असंख्य पक्षियों का मधुर कलरव था । राह के दोनों ओर फूल-पत्तियाँ थीं । हवा में सुगन्ध थी । आसमान में सूरज बादलों के साथ आँखमिचौनी खेल रहा था । कभी सरदी बढ़ जाती थी और कभी हल्की-हल्की धूल निकल आती थी । शीघ्र ही मैं निगली नाले पर पहुँचा । भरने के दोनों ओर घना जंगल है । बीच में बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी हैं । एक-एक चट्टान सैकड़ों-हज़ारों टन की होगी । भरने का स्वच्छ

जल इन भीमकाय चट्टानों से टकराकर शोर मचाता है, फिसलता है और फिर उल्लस-उल्लसकर इन्हें गीला करता है। भरने की शीतलता, भाग, सफेदी और शोर—ये सब निरन्तर बने रहते हैं। दाताजे, सदैव उत्साहपूर्ण।

घोड़े को घास चरने के लिए खुला छोड़कर मैं दो-तीन घण्टों तक भरने की चट्टानों पर स्वच्छन्दता पूर्वक कूदता-फाँदता रहा। अपने कैमरे से इस भरने के मैंने अनेक फोटो भी लिये। खाया, पीया और उसके बाद वापस लौट चला।

वापसी में मैंने अपने घोड़े को सरपट नहीं दौड़ाया। राह के दृश्यों ने मेरा संपूर्ण ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था, अतः घोड़े पर मैंने किसी तरह का शासन नहीं किया। वह आज्ञादी के साथ, चाहे जिस चाल से, चलता रहा। सहसा सामने की ओर से मुझे एक चोख-सी सुनाई दी। मेरी तन्मयता भंग हो गई। मैंने देखा, सामने के मैदान में एक घोड़ा बेतहाशा दौड़ा चला जा रहा है, और उस पर एक स्त्री सवार है। घोड़े की जीन को, लेटी हुई-सा दशा में कसकर पकड़े हुए वह नारी सहायता के लिए भरसक चिल्ला रही थी। उसी निगाह में मुझे यह भी दिखाई दिया कि पग-डण्डी पर तीन-चार अन्य घुड़सवार भी मौजूद हैं। सब-की-सब लड़कियाँ ही। वे सब असमर्थों का-सा भाव धारण किये अपने काश्मीरी कुलियों को वह घोड़ा पकड़ने का आदेश दे रही थीं।

एक ही क्षण में मैंने अपना घोड़ा उसी ओर दौड़ा दिया और शीघ्र ही उस स्त्री-सवार के निकट जा पहुँचा। अपने घोड़े पर से कूदकर मैंने उस घोड़े को लगाम पकड़ ली।

फिर वही आँखें !

मैं सहसा घबरा-सा गया। मुझे यह भी नहीं सूझा कि मैं क्या कहकर उस कन्या को आश्वासन दूँ। मगर मेरी घबराहट की ओर उसका ध्यान नहीं गया। वह स्वयं ही बहुत अविक संकटापन्न दशा में जो थी !

पहले उसी ने मुझे धन्यवाद दिया। मालूम होता है, उसने मुझे

पहचाना नहीं। धन्यवाद देकर उसने शीघ्रता से कहा—बड़ा नटखट घोड़ा है ! मैं पहले ही कह रही थी कि मैं इस पर सवार न होऊँगी।

उसकी आवाज़ में अभी तक भय की कँपकँपी थी। मैंने कहा—आपने बड़ी हिम्मत दिखाई है। घोड़े की चाल इतनी तेज़ हो जाने पर भी आप गिरी नहीं।

वह इस पर लजा-सी गई। उसने कहा—मैं घुड़सवारी तो क्या जानूँ। सुना था, इधर के घोड़े बहुत सीधे होते हैं।

इसी समय उसके साथ की अन्य सभी लड़कियाँ और घोड़ेवाले कुली भी वहाँ आ पहुँचे। घोड़े की लगाम अभी तक मेरे हाथों में थी, और लड़की भी अभी तक घोड़े की पीठ पर ही थी। एक काश्मीरी ने लगाम अपने हाथों में धाम ली और दूसरे ने जीन को सँभाला। वह लड़की नीचे उतर आई। उसके साथ की सब लड़कियों ने मुझे धन्यवाद दिया, और मैंने कहा कि इसमें धन्यवाद की बात ही क्या है !

उन्होंने मुझसे पूछा—आप किस जगह ठहरे हुए हैं ?

मैंने अपना पता बता दिया।

मेरे निवास का पता सुनकर जैसे उस लड़की ने मुझे पहचान लिया। उसके मुँह से दृष्टात् निकला—ओहो ! परन्तु उसी क्षण अपने को पूर्णतः संयत करके उसने बड़ी शान्ति के साथ कहा—मैं समझ गई।

इसके बाद दो-चार मामूली-सी और बातें भी हुईं, और तब वे लोग निगली नाले की ओर बढ़ गये। जाते हुए वे कल प्रातः के लिए मुझे अपने यहाँ चाय के लिए निमन्त्रित भी करते गये।

उस नटखट घोड़े की रास अब एक काश्मीरी के हाथ में थी। वे सब घोड़े अब बहुत धीमी चाल से जा रहे थे, और वह घोड़ा सबसे पीछे कर दिया गया था। मेरी नज़र अभी तक उसी ओर थी कि कुछ ही दूर जाकर उस लड़की ने पीछे की ओर घूमकर देखा।

अचानक एक बार पुनः मेरी और उसकी नज़र मिल गई।

ओह, फिर वही निष्पाप, लजाभरी, स्वच्छ आखें।

भाई कमल, मुझे नहीं मालूम कि वे लड़कियाँ कौन हैं। सभी नव-

युवतियाँ हैं। मेरा अनुमान है कि उनमें से अभी तक किसी का विवाह नहीं हुआ है। मैं उनमें से किसी का नाम भी नहीं जानता, मकान का पता देने के लिए केवल एक पुरुष का नाम ही उन्होंने मुझे बताया है। मैं यह नहीं जानता कि वे आपस में बहनें हैं, सहेलियाँ हैं, एक साथ पढ़नेवाली हैं, या रिश्तेदार हैं। मुझे कुछ भी नहीं मालूम। परन्तु एक बात मैंने अच्छी तरह देख ली। वह यह कि उस लड़की के गेहुँए चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं है। उसकी आँखों में, पलकों या भौंहों में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसके संबन्ध में कवि लोग बड़ी-बड़ी उपमाएँ खोज-खोजकर दिया करते हैं। फिर भी उसकी निगाह में कुछ है। क्या है—यह मैं नहीं कह सकता ; मगर कुछ है जरूर।

बाहर अँधेरा हो गया है। सरदी भी अब अनुभव होने लगी है, अतः प्रणाम।

अभिज्ञ—

स०

[५]

गुलमर्ग

१७ श्रावण...

प्यारे कमल,

आज जाकर मुझे तुम्हारा पहला पत्र मिला है। तुम सब मानो, गुलमर्ग के छोटे-से बाजार के साइनबोर्डों के अतिरिक्त यहाँ एक पहली चोज़ है, जिसे मैंने इन पाँच-छै दिनों में पढ़ा है।

मेरा आज का दिन भी बड़े आनन्द से गुज़रा है। सुबह-सुबह मैं उन लोगों के यहाँ चाय पीने गया था। उसके बाद हम लोग एक साथ खिलनमर्ग की सैर के लिए निकल गये। यहाँ घंटों तक उस खुले मैदान में बैठकर ताश खेला किये। सैर की, खेले-कूदे और फिर वापस लौट आये। सब लोग मेरे निवासस्थान पर आये। शाम की चाय यहाँ ही हुई, और अभी-अभी मैं उन्हें उनके घर तक छोड़कर आ रहा हूँ।

मुझे उनका परिचय भी मिला गया है। वह लड़की अपने भाई और एक

चचेरी बहन के साथ, काफ़ी दिन हुए, यहाँ आई थी। उसके पिता एक संपन्न व्यापारी हैं, उनका कारोबार खूब चलता हुआ है। वह लड़की लाहौर के एक महिला-कॉलेज में पढ़ती है, और बाकी तीनों लड़कियाँ उसके क्लास की हैं, उसकी मित्र हैं और उसी के निमन्त्रण पर यहाँ आई हैं। उसके भाई का स्वभाव भी बड़ा मधुर है। गुलमर्ग में उसके दोस्तों की इतनी अधिकता है कि उनकी ओर से छुटकारा पा सकना ही उसके लिए कठिन हो जाता है। हम लोग आपस में खूब हिलमिल गये हैं। मैंने उन लोगों के अनेक फोटो भी लिये हैं।

आज जल्दी ही सो जाने को जी चाहता है। तुम्हारा पत्र इस समय मेरी आँखों के सामने नहीं है। कुछ याद नहीं आ रहा है कि तुमने उसमें कोई बात पूछी भी थी या नहीं ! चलो, जाने दो। यह तो मुझे मालूम ही है कि तुम कोई खास काम की बात तो पूछ ही नहीं सकते।

यह भी नामुमकिन नहीं कि मैं कुछ दिन और ठहर जाऊँ।

स्नेही—

स०

[६]

गुलमर्ग

१८ श्रावण,

कमल,

संभ्रम होने को है। दिन भर से आस्मान में बादल छाये हुए थे। इस समय मूसलधार वर्षा हो रही है। मेरे कमरे की सब खिड़कियाँ बन्द हैं। कमरे में बत्ती जल रही है। मेरे कानों में एक संगीत गूँज रहा है—बहुत करुण, बहुत पवित्र और बहुत ही मधुर। इस संगीत में शब्द नहीं, केवल स्वर है। स्वर भी क्या, केवल गूँज है। छत की टीन पर वर्षा पड़ने की जो एकसाँ आवाज़ हो रही है, वह इस गूँजमय संगीत का साज है और ठंडी, गीली हवा की धू-धू इस संगीत की तान का काम कर रही है।

मैं अकेला हूँ। दिन-भर अकेला नहीं था; परन्तु इस समय फिर से अकेला ही हूँ। वह अपने भाई और छोटी बहन को साथ लेकर यहाँ आई

थी । ३ बजे के करीब उसके भाई चाय के एक निमन्त्रण पर बाहर चले गये । वह और उसकी बहन यहाँ ही रह गईं । कलवाले फोटोग्राफ धुलकर आ गये थे । उन फोटोज़ की आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही । और भी बीसियों तरह की बातें हुईं । शाम का आँधरा जब बढ़ने लगा, तो मैंने उससे अनुरोध किया कि वह कोई गाना सुनाये । बड़ी भिन्नता के बाद उसने एक गाना मुझे सुनाया । ओह, वह कितना मधुर गाती है ! मैं किसी दूसरे लोक में जा पहुँचा । मुझे नहीं मालूम कि संगीत कब समाप्त हुआ । हाँ, उसके भाई साहब का आना मुझे जरूर याद है । देर हो गई थी, अतः वे लोग लौटने को हुए । मैंने उन लोगों को सहन के फाटक से ही विदा दे दी । उन्हें छोड़ने के लिए दूर तक केवल इसी लिए साथ नहीं गया, क्योंकि मुझे ज्ञात था कि उसके भाई साहब चुपचाप चलना पसन्द नहीं करेंगे, और इस समय मैं न कुछ कहना चाहता था, न बोलना चाहता था ।

उन्हें गये थोड़ी ही देर हुई थी कि जोर की वर्षा शुरू हो गई । मैं तब से इसी कमरे में बैठा हूँ । संगीत कभी का थम गया, गानेवाली भी चली गई ; मगर उसकी गूँज अभी तक बाकी है—उसी तरह जीवित रूप में बाकी है । संगीत की वह अनिर्वचनीय अमूर्त गूँज वर्षा की आवाज़ का प्राकृतिक साज पाकर मानो और भी अधिक भेदिनी बन गई है ।

कमल, तुम मेरे सुख-दुःख के साथी हो । अपनी सभी अनुभूतियाँ तुमसे कहकर मैं अपने चित्त का बोझ हल्का किया करता हूँ ; मगर यह एक अनुभूति कुछ ऐसी है कि इसे मैं ठीक तौर से व्यक्त भी नहीं कर सकता । मेरे जो मे आँधी-सी चल रही है ; मगर यह आँधी बिल्कुल शब्द-रहित है, जैसे नदी का वेगवान् पानी अन्दर-ही-अन्दर से किनारे के कछारों को काट रहा हो ।

अपनी एक पुरानी धुँधली-सी अनुभूति मुझे इस समय साफ़ तौर से समझ में आ रही है । हम मनुष्यों के बाह्य-जीवन आपस में एक दूसरे पर इतने अधिक आश्रित हो गये हैं कि हम लोगों के लिए इस तरह का एक दिन भी काटना संभव नहीं रहा, जब कि एक मनुष्य का किसी भी दूसरे मनुष्य से किसी तरह का वास्ता न पड़े । इस पर भी मैं सदैव अनुभव करता रहा हूँ कि हम लोग आपस में एक दूसरे से बहुत अधिक दूर हैं । हृदयों का

यह पारस्परिक अपरिचितपन हमारे दैनिक व्यवहार में, हमारे सामान्य जीवन में कोई बाधा नहीं डालता । फिर भी हमारे जी को, हमारे अन्तःकरण को और शायद हमारी अन्तरात्मा को भी यह चाह रही है कि वह किसी दूसरे जी को, किसी दूसरे अन्तःकरण को अपना ले । यही चीज़, अन्तरात्मा की यही चाह, प्रेम है, जिसे वासना का परिधान पहनाकर हम लोग बहुत शीघ्र मैला कर डालते हैं । आज इस संगीतमय, ठंडे, शान्त और सुन्दरतम वातावरण में मैं यह अनुभव करने लगा हूँ कि मेरे अन्तःकरण में भी इसी तरह की कोई बेचैनी सहसा उठ खड़ी हुई है ।

आज उससे मेरी खूब बातें हुईं । अधिकांश बातें बिल्कुल बेमतलब की थीं ; मगर फिर भी वे बातें अत्यन्त मधुर और दिल को सँतलानेवाली थीं ।

एक बात ऐसी भी हुई, जिसने मेरे हृदय को वेग के साथ झनझना दिया । बातचीत में उसने ज़रा हैरानी के साथ मुझसे पूछा—आप अकेले ही रहते हैं ?

मैंने कहा—हाँ ।

उसने पूछा—हमेशा इसी तरह रहते हैं ?

मैंने कहा—प्रायः हमेशा ही ।

कुछ क्षण के बाद उसने मुझसे पूछा—सुबह आपको दूध पिलाने का काम किसके हाथों में है ?

मुझे उसका भोला-सा सवाल बहुत ही मधुर जान पड़ा । मैंने कहा—जो लोग मेरी ज़रूरत की और सब चीज़ों का इन्तज़ाम करते हैं, वे ही दूध का इन्तज़ाम करते हैं ।

उसने फिर पूछा—आप सुबह खाते क्या हैं ?

मैंने कहा—दूध, टोस्ट, मक्खन, शहद, ओवलटिन और थोड़े-से मेवे ।

योही बिल्कुल निष्कलंक भाव से उसने ज़रा आग्रह के स्वर से कहा—अगर मैं आपके दूध का इन्तज़ाम करनेवाली होती, तो आपको पता लगता कि सुबह के कलेवे में कितना स्वाद आता है ।

मेरा संपूर्ण अन्तःकरण झनझना उठा । अपने चेहरे पर हल्की-सी और

फीकी मुस्कराहट ले आने के अतिरिक्त मैं उसकी इस अत्यन्त मधुर बात का कोई जवाब नहीं दे सका ।

मुझे मालूम है कि उसने जो कुछ कहा था, इसका कोई गहरा अभिप्राय कदापि नहीं था । संभवतः घर के लोगों को सुबह दूध पिलाने का इन्तज़ाम उसी के ज़िम्मे होगा ; मगर फिर भी मेरे दिमाग ने उसकी इस बात को इतनी गहराई के साथ हृदय के पास पहुँचाया कि मेरा संपूर्ण अन्तःकरण बहुत ही मीठे स्वरों में ध्वनित हो उठा ।

हाथ ठिठुर रहे हैं । मेरी यह चिट्ठी पढ़कर तुम कहीं ऊबने तो नहीं लगे ? ठीक है न ? या अभी कुछ और सुनने की इच्छा है ?

मगर नहीं, अब और नहीं ।

तुम्हारा—

स०

[७]

गुलमर्ग

१६ श्रावण...

माई कमल,

इस समय सुबह के दू बजे हैं । मेरा सामान बँधकर तैयार पड़ा है । सदन में एक कसा हुआ घोड़ा और सामान के टट्टू तैयार खड़े हैं । मैं इसी वक्त नीचे के लिए खाना होने लगा हूँ । बस, तुम्हें यह पत्र लिखकर मैं घोड़े पर सवार हो जाऊँगा । यह भी पूरी तरह मुमकिन है कि इस पत्र से पहले ही मैं स्वयं तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ ।

कल मैंने हरादा किया था कि कम-से-कम पाँच दिन यहाँ और ठहरूँगा । उन लोगों से भी मैंने यही बात कही थी । आज दोपहर को मुझसे मिलने के लिए उन्हें यहाँ आना भी है ; मगर आज सुबह नींद से बहुत जल्दी जगकर मैंने यही निश्चय किया कि मुझे यहाँ से चल ही देना चाहिये । इस आशय की एक चिट्ठी उनके नाम पर भी डाल रहा हूँ कि एक अप्रत्याशित कार्य के

लिए मुझे इस तरह, बिल्कुल अचानक अपने...नगर के लिए रवाना होना पड़ रहा है ।

तुम इस चिट्ठी को पाकर, अथवा, चौथे दिन मुझे ही अपने समीप देखकर, हैरान होगे कि बात क्या हुई । कहने को तो मैं तुम्हें भी यही कह सकता हूँ कि अधिक दिन बाहर रहने से काम-काज में हर्ज होता, इसी से चले आना पड़ा ; परन्तु दरअसल बात ऐसी नहीं है । बात वास्तव में इतनी ही है कि अपने शिक्षा और अपनी परिस्थितियों के संस्कारों से बाधित होकर ही मैं आज यहाँ से चल दिया हूँ ।

कुछ समझे ? नहीं, मुझे यकीन है कि कमल का मोटा दिमाग मेरी इस महीन बात को ज़रा भी नहीं समझा होगा ।

देखो न, भाई कमल, बात यह है कि पश्चिम की शिक्षा ने, पश्चिम के रीति-रिवाजों ने, हमें यह सिखाया है कि हमें अपने दिल को, अपने अन्तःकरण को, और अपनेपन को बहुत महँगा बना लेना चाहिए । हम सबसे मि-लें-जुलें, सबसे मीठी-मीठी बातें करें, सबसे फ़ायदा उठायें, इच्छा हो और संभव हो, तो लोगों से सभी तरह के विनोद और आमोद भी प्राप्त करें ; परन्तु अपना अन्तःकरण, अपना हृदय अपने ही पास रखें, क्योंकि वह हमारी चीज़ है, और किसी की भी नहीं । अपने दिल को बिल्कुल निस्संग बनाने की भी आवश्यकता नहीं है ; वह तो आत्म-विनोद का सर्वश्रेष्ठ साधन है । तुम सबसे मिलो जुलो, हँसकर, खुलकर, मीठी-मीठी बातें करो ; मगर किसी के बन मत जाओ ; अपना सब कुछ किसी को अर्पित मत कर दो । व्यक्तित्व को भावुकता की ज़हरीली गैस से मूर्छित न होने दो ।

मैंने यह अनुभव किया है, कमल, कि मेरे हृदय में भावुकता बाकी है, वह भी काफ़ी मात्रा में । मेरा हृदय मोह में पड़ गया है । पूरब के अशिक्षित मनुष्यों के समान वह चाहता है कि वह जिसकी ओर झुका है, उसी का बनकर रहे, मगर मेरे दिमाग की शिक्षा ने मेरे जी को यह चेतावनी दी है कि प्रेम का उद्देश्य सर्वस्व समर्पण की भावना नहीं, अपितु आत्म-विनोद मात्र है । परन्तु मुझे भय है कि इस त्रास मामले में मैं अपने मस्तिष्क के आदेश का पालन शायद ही कर सकूँ । इससे मैंने निश्चय किया है कि मैं अपने को इस

कठिन परीक्षा में न डालूँ और यहाँ से चल दूँ। देखूँ, इस सबका परिणाम क्या होता है। देखूँ, गुलमर्ग को भुला सकता हूँ या नहीं। अब तो आ ही रहा हूँ। बेफिक्र रहो। मैं नये युग की उपज हूँ।

अभिन्न—

स०

मैना

अलियार जब मरा, तो दो पुत्र, छोटा सा घर और थोड़ी-सी ज़मीन छोड़कर मरा। दसवें के दिन दोनों भाई क्रिया-कर्म समाप्त करके सिर मुड़ाकर आये, तो आने के साथ ही बटवारे का प्रश्न छिड़ गया। और इस समस्या के समाधान के लिए इतने जोरों से लाठियाँ चलीं कि दोनों भाइयों के मुंडित मुँह फूट गये।

दोनों भाइयों ने इस प्रकार एक दूसरे का सिर फोड़कर अपना-अपना अपमान मान लिया। बड़े भाई 'मुसाफिर' की धारणा था कि छोटे भाई ने सिर फोड़कर मेरा बड़ा भारी अपमान किया है। छोटे भाई 'जगन' की भी यही शिकायत थी कि बड़े भाई ने बड़ी मज़बूत लाठी से मेरा अपमान किया है। दोनों ने प्रतिज्ञा की कि इस अपमान का बदला नहीं लिया, तो मेरा नाम नहीं!

किन्तु अपमान के प्रतیشोध के लिए मुक़दमा लड़ने को किसी के पास नही थे। केवल लाठियों का भरोसा था; लेकिन इसका मौक़ा नहीं था। दोनों ही सतर्क रहते थे। ख़ैर, किसी प्रकार दोनों भाई अपने उसी घर में, एक म्यान में दो तलवारों की तरह रहने लगे; लेकिन एक म्यान में दो तलवारों के रहने से तलवारों का उतना नुक़सान नहीं होता, जितना कि बेचारे म्यान का। दोनों का क्रोध अपने घर ही पर उतरता था। मुसाफिरराम को ज़रूरत हुई, तो छोटे भाई के लगाये हुए कुम्हड़े और करैले की लताओं को तदस-नदस करके अपनी गोशाला बना ली। इधर जगन ने आवश्यक समझते ही बड़े भाई के भंडार घर का तोड़कर दरवाज़े के साथ मिला दिया। घर तोड़ने की ख़बर

मुनते ही मुसाफिरराम अपने भाई का सिर तोड़ने के लिए तैयार हो गये ; किन्तु गाँववालों ने बीच-बचाव करके भगड़ा शांत कर दिया ।

यह लड़ाई केवल पुरुषों तक ही थी, यह बात नहीं है । स्त्रियों में भी ऐसा घमासान वाग्युद्ध होता था जिसका ठिकाना नहीं ।

हाथ चमकाकर, माथा मटकाकर, नथ हिलाकर, ऐसी-ऐसी गालियों की बौछार की जाती थी, जिसका अमृतरस लूटने के लिए गाँव की सारी महिलाएँ एकत्र हो जाती थीं । मुनिया को आदमी का मांस खाना अभीष्ट नहीं था, फिर भी बड़ी तेज़ी से निनाद करके रघिया को धमकी देती थी—तेरा भतार खा जाऊँगी ! रघिया भला अपनी चीज़ कैसे दे सकती थी ! चट से कहती—मेरा भतार क्यों खायगी ; तेरा मुस्टंडा तो अभी जीता ही है, उसी को चबा ! इसी प्रकार दोनों देबरानी-जेठानी साहित्य के नवरसों से भिन्न गाली-रस की सृष्टि किया करती थीं ।

यह लड़ाई-भगड़ा, गाली-गलौज, एक-दो दिन रहता, तब तो ठीक ; यहाँ तो महीने की लम्बी डग मारता हुआ साल चला गया । घर और बाहर सभी इस भगड़े से ऊब उठे । गाँववालों ने कहा—भाई, तुम लोग आपस में क्यों इतना भगड़ा करते हो ! अपनी-अपनी चीज़ें बराबर बाँट लो, बस भगड़ा खतम हो गया ।

दोनों ने सकार लिया, बात ठीक है ।

आखिर एक दिन गाँववालों की पंचायत जमा हुई । सब कुछ देख-भालकर दुखदरन पाँडे ने, तम्बाकू फाँकते हुए फैसला सुना दिया । और तब आगिन के बीच में दीवार खींच दी गई । घर की कोठरियों को गिन-गिनकर अलग किया गया । दल, बैल, खेत, बारी सब कुछ अलग-अलग हो गये । अब कोई भाई किसी से बोलना भी पसन्द नहीं करता था । एक दूसरे को देखते ही घृणा से मुँह फेर लेता था ।

(२)

उपयुक्त घटना को दो वर्ष बीत गये ।

बिल्ली की बरह घर-घर घूमनेवाली पद्मिनी काकी एक दिन मुसाफिर के घर में जाकर बोली—मुँह मीठा कराओ, तो एक बात कहूँ !

रधिया ने उत्सुकता से पूछा—'कीन' बात है काकी, कहो न ?

'तुम्हारा भतीजा होनेवाला है !

रधिया का चेहरा घृणा से सिकुड़ गया । क्रोध से जल उठी । मुँह बिचकाकर बोली—अब नौज, चूल्हे-भनसार में पड़े भतीजा, और देवी महिषा के खप्पर में जायें हमारे देवर देवरानी । इनको बेटी-बेटा हो, इससे हमको क्या और नहीं हो, इससे क्या । अगर इन लोगों का बस चले, तो हम लोगों को न जाने कब फाँसी लटका दें । ये लोग जैसे अपने हैं, उससे गैर ही कहीं अच्छे ।

इस प्रकार रधिया ने भलीभाँति साबित कर दिया, कि इससे मुझे तनिक भी खुशी नहीं और पद्मिनी काकी का मुँह मीठा खाने लायक नहीं है ।

यह बात बड़े विस्तार-पूर्वक मुनिया के निकट पहुँची । रधिया जलती है, यह सुनते ही उसे एक ईर्ष्यामय आनन्द हुआ । बोली—अभी से उस कल-मुँही के कपार में आग लग गई, तब तो लड़का होने से वह छाती फाड़कर मर जायेगी !

जगन घर में आया, तो उसे भी यही समाचार सुनना पड़ा । सुनकर उसे हर्ष नहीं हुआ । घृणा से जी छाटा हो गया । अपने भाई-भौजाई होकर भी ये लोग कितने नीच हैं ! बोला वे लंग तो जनम के जलन्त, उनकी बात को लेकर कहाँ तक क्या किया जाय ?

उन दिनों पद्मिनी काकी प्रतिदिन, एक नई सनसनीदार घटना की खबर लेकर, मुनिया के निकट उपस्थित होती थीं । आज रधिया देवी मैया के मन्दिर में धरना देने गई हैं, कि तुम्हारे पेट का लड़का नष्ट हो जाय । आज एक ओम्हा बुलाया गया है । बड़ा नामी ओम्हा है । उसके मन्त्र का मारा हुआ पानी भी नहीं पीता । भगवान् जाने क्या होगा । रोज़ इसी प्रकार की नई घटनाओं का उल्लेख करके वह मुनिया से कुछ-न-कुछ जोग-टोट के लिए भटक ही लेती थी ।

किसी प्रकार इन मारन-मोहन-उच्चाटन-वशीकरण से घोर युद्ध करता हुआ, कई महीनों का सुदीर्घ समय व्यतीत हो गया । आज मुनिया को लड़का होनेवाला है । उसकी वर्षों की मुराद पूरी होगी । खाली गोद भर जायेगी ।

जगन के इष्टमित्र भी चढ़क रहे थे—भाई, भर पेट खिलाना पड़ेगा, यहाँ पौने तीन सेर से छुटाक भर भी कम नहीं खाते। जगन प्रसन्नता-पुलकित होकर उत्तर देता—अरे, इतना खिलाऊँगा कि खाते-खाते पेट फट जायगा। भीतर गाँव की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ बच्चे की सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं। अन्य महिलाएँ स्वयंसेविकाओं की तरह दूसरे-दूसरे काम में व्यस्त थीं; किन्तु न मुसाफिर का पता था और न रघिया का। बाहर एक आदमी ने जगन से कहा—इस समय तुम्हें सब बैर भूलकर अपने भाई को बुलाना चाहिए था। जगन ने उत्तर दिया—बुलाया भाई, पचासों दफे आदमी भेजा, खुद गया, जब आते ही नहीं, तो क्या करूँ ?

भीतर की औरतें आपस में कह रही थीं, ऐसे समय में आदमी सब लागडाट भूल जाते हैं। भाई-भौजाई होकर भी वे लोग नहीं आये।

इस समय भी मुनिया कहने से न चूकी—चूल्हे में जायँ वे लोग, नहीं आये, यही अच्छा हुआ !

उस समय रघिया अपने घर में चिन्ता से चूर बैठी थी। ईर्ष्या से उसका कलेजा जल रहा था। बार-बार भगवान् को दोष दे रही थी, उसे क्यों लड़का हो रहा है, मुझे क्यों नहीं हुआ !

मुसाफिर को तो ऐसा मालूम होता था, जैसे उसका सर्वस्व लुट गया। अगर वहीं लड़का हुआ, तो मेरे घर-द्वार का भी वही मालिक होगा। आज तक उसने कभी अपने निःसन्तान होने के विषय में नहीं सोचा था। किन्तु अब यही बात, तीर की तरह, उसके हृदय को बार-बार बेघर रही थी। गाल पर हाथ रखे वह इन्हीं ईर्ष्यामय विचारों में मग्न था। पड़ोस का शोर उसे ऐसा मालूम होता था, जैसे यह सब आयोजन उसी को चिढ़ाने के लिए किया गया है।

इसी समय मालूम हुआ, कि जगन के यहाँ लड़की पैदा हुई है।

मुसाफिर ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा—जाने दो, लड़का नहीं पैदा हुआ, यह अच्छा हुआ।

यह उसके मन की वह प्रवृत्ति थी, जो निराशा की डाल पर भी सन्तोष के घोंसले बनाती है।

(३)

समय-पंखी उड़ता हुआ, छः वर्षों का पथ और भी पार कर गया ।

जगन की लड़की मैना अपने द्वार पर बैठी हुई धूल के षरौंदे बनाती और बिगाड़ती नज़र आती थी । उसे देखकर मुसाफिर को क्रोध नहीं आता था, एक प्रकार का ममत्व जाग्रत हो उठता था । जी में आता था कि उस धूलि-धूसरित बालिका को गोद में उठाकर चूम लें । वह दूर से बैठकर उसकी बाल-क्रीड़ा को देखता था और फूला न समाता था । मैना को गोद में लेने की बलवती इच्छा को वह कैसे दबाता था, यह उसके सिवा और किसी को नहीं मालूम ।

असाढ़ रथ-द्वितीया के दिन, उसी के गाँव के समीप, करौंदी में मेला लगता था । उस मेले में कोई खास बात नहीं थी । जगन्नाथ स्वामी के मन्दिर में खूब घड़ी-घण्टा बजाकर, उनकी पूजा होती थी । सन्ध्या के समय, मनुष्यों के रथ पर लादकर, देवताओं को एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर में पहुँचा दिया जाता था । आसपास के सभी गाँववाले वहाँ एकत्र होते थे, काफ़ी भीड़ जुट जाती थी । मुसाफिर भी वहाँ गया था । वहाँ खिलौनों की दूकान देखकर टिठक गया । इच्छा हुई कि मैना के लिए कुछ खिलौने लेजा चलूँ । फिर सोचा—मगर इसके लिए कहीं जगन या उसकी बहू कुछ कह दें तब ! उसने इच्छा को बन्धपूर्वक त्याग दिया और आगे बढ़ा । आगे भी खिलौने की दूकान थी । एक-से-एक अच्छे खिलौने भली भाँति सजाकर रखे हुए थे । मुसाफिर रुक गया और दूकान की ओर देखने लगा । खिलौने सभी सुन्दर थे; जिस पर दृष्टि जाती थी, उससे आँखों को हटाना कठिन था । यद्यपि इनमें से एक भी खिलौना मैना को मिले, तो वह कितनी खुश हागा ! मुसाफिर की कल्पना की आँखों के आगे मैना उसके दिए हुए खिलौने का लेकर छाती से लगाये हुए दिखलाई पड़ने लगी । वह इसी आत्म-वस्तुता दशा में दूकान के सामने जाकर खड़ा हो गया । एक खिलौना उठाकर पूछा—इसका कितना दाम है ?

‘छः आने !’

मुसाफिर को मानो होश हुआ । यह खिलौना मैं किसके लिए खरीद.

रहा हूँ ! उसी के लिए, जो मेरे वैरी की लड़की है ! मगर अब क्या करता ? दाम पूछ चुका था, अगर वहाँ से योंही चल देता तो बड़ी हेठी होती । बस टाल देने के लिए बोला—तीन आने में देते हो तो दे दो ।

‘अगर लेना ही है तो चार आने से कौड़ी कम नहीं लूँगा ।’

अब तो सिर्फ चार पैसों पर बात अटक गई । अगर ले ही लूँ, तो क्या होगा । नेरा दुश्मन जगन है कि उसकी लड़की ! बेचारी का क्या कसूर । जैसे वह जगन का लड़की है, वैसे ही मेरी लड़की है । बेचारी को मैंने कभी कुछ नहीं दिया । लोग अपने भतीजे-भतीजी को लाख-दो-लाख दे देते हैं, अगर मैंने एक चार आने का खिलौना ही दे दिया, तो क्या दिया ?

मुसाफिर जब खिलौने को खरीदकर चला, तो उसके हृदय में जितना उल्लास था, उतनी ही भगड़े की आशंका भी थी ।

साँझ के समय घर पहुँचा । मैना उस समय अपने पता से पाई हुई सिटी बजा-बजाकर खुश हो रही थी । इसी समय मुसाफिर जाकर उसके सामने खड़ा हो गया । खिलौना हाथ पर रखकर कहा—देख बेटी, यह खिलौना तेरे लिए लाया हूँ, पसन्द है ?

मैना खुशी से नाच उठी । बांली—हाँ चाचा, खूब पसन्द है ; अबकी मेले में जाआगे, तो मेरे लिए एक हाथी, एक खरगोश और एक कछुआ लेते आआगे ?

‘अच्छा, लेता आऊँगा’—कहकर मुसाफिर ने उसे गोद में उठाकर चूम लिया ।

मैना बोली—तुम बड़े अच्छे आदमी हो चाचा, तुम मेरे लिए मेले से खिलौना ला देते हो, गोद में लेकर दुलार करते हो ।

मुसाफिर ने स्नेह से पूछा—और तेरा बाप दुलार नहीं करता ?

मैना सिर हिलाती हुई बोली—नहीं, वह दुलार नहीं करता, वह तो मुझे गोद में भी नहीं लेता ।

(४)

एक दिन मुसाफिर गोद में मैना को लिये घर के भीतर गया, तो रघिया बांली—तुम्हारे रंग-रंग मुझे अच्छे नहीं लगते ।

मुसाफिर ने सहज उत्सुकता से पूछा—क्यों, क्या हुआ ?

पराई बेटी के पीछे काम-धन्धा छोड़कर, दिन-रात पागल बने फिरते हो। अगर अपनी बेटी होती तो क्या करते ! कल खेत पर भी नहीं गये, सारा दिन बाँस की गाड़ी बनाने में बिता दिया।

मुसाफिर ने हँसकर कहा—पराई बेटी कैसे हुई ! क्यों मैना, तू दूसरे की बेटी है ?

मैना ने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

‘तब किसकी बेटी है ?’

मैना उसके गले में अपना दोनों बाँहें डालकर बोली—तुम्हारी !

मुसाफिर मुस्कराता हुआ गर्व से अपनी पत्नी की ओर देखकर बोला—देखती हो ?

रधिया ने कहा—सब देखती हूँ ; लेकिन अगर कुछ हो गया, तो यही सम्झ लो कि तुम्हारे सिर का बाल भी नहीं बचेगा। जो कुछ असर-कसर बाकी है, वह भी पूरी हो जायगी।

मुसाफिर ने मैना को चूमकर कहा—मेरी बेटी को क्यों कुछ होगा, जो कुछ होना होगा, सो इसके दुश्मन को होगा। क्यों बेटी ?

मैना ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति जता दी।

रधिया ने मुँह फुनाकर कहा—एक दफ़े कपार फुटवा ही चुके, अबकी मालूम होता है, मूँछ उखड़वाओगे।

मुसाफिर के दिल में कुछ चोट लगी। उसने सिर उठाकर कहा—तुम ताँ मैना को फूटी आँखों भी नहीं देख सकती। यह मेरी गोद में नहीं आये, तब तुम्हारा कलेजा टढ़ा रहेगा।

रधिया तीव्र स्वर में बोली—कौन कहता है कि मैना मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाती ! बोलते कुछ लाज भी लगती है कि नहीं ! लड़के-बच्चे भी किसी के दुश्मन होते हैं ! मैना को देखती हूँ, तो गोद में लेने के लिए तरस-कर रह जाती हूँ ; मगर करूँ तो क्या, इसके मा-बाप ऐसे हैं, जिनसे दुश्मन भी भला। छोड़ देती हूँ, कौन जाने मैना को दुलार करने से हमारी माल-किनजी रौंड़-निपूती करने लगे।

इसी समय मैना अपने चाचा की गर्दन भकभोरकर बोली—चाचा, चाचा, चलो मुझे गाड़ी पर चढ़ाकर टहला दो ।

‘चल !’—कहता हुआ मुसाफिर उसे लिये हुए घर से बाहर चला गया । उस दिन मैना गाड़ी पर चढ़कर खूब घूमी ; लेकिन जब उसकी छोटी-सी गाड़ी समस्त गाँव की परिक्रमा करके लौटी, तो उसे कुछ ज्वर-सा हो आया था । मुसाफिर ने देखा कि उसका शरीर कुछ गर्म है । बोला—घर चली जाओ बेटी, शायद तुम्हें बुखार आयेगा ।

मैना ज़िद करने लगी—नहीं चाचा, थोड़ा और घुमा दो । थोड़ा-सा । फिर घर चली जाऊँगी ।

‘नहीं नहीं, अब घर जाओ ।’

मैना मलीन मन गाड़ी से उतरकर घर चली गयी । उस दिन वह बहुत उदास हो गई थी । चाचा यदि थोड़ा और घुमा देते तो क्या होता ?

(५)

दूसरे दिन, मुसाफिर दिन भर मैना को नहीं देख सका । मालूम हुआ कि उसे ज्वर हो आया है । मुसाफिर दिन भर बहुत ही उदास रहा । खेत पर भी नहीं जा सका । बैल भूखे थे, उन्हें सानी देने की भी याद नहीं रही । मालूम होता था, जैसे वह निर्वासित कर दिया गया है । मैना के बिना उसे अपना जीवन सुनसान और भयावना प्रतीत होता था । वह जहाँ बैठा था, दिन भर वहीं बैठा रह गया । रात हुई तो रबिया आकर बोली—आज लाओगे नहीं क्या ?

‘ना, आज भूख नहीं है ।’

‘तुम तो मुफ्त में अपनी जान गँवा रहे हो । जिन लोगों के लिए प्राण हत रहे हो, उन्हें तो तुम्हारी परवाह ही नहीं है । यह किसी से नहीं हुआ कि तनिक बुलाकर दिखला देते । हाय री बच्ची, कल ही भली-चंगी थी, आज न-जाने कैसे क्या हो गया ! मेरा तो जी चाहता है कि जाकर एक बार देख आती ।’

मुसाफिर प्रसन्न होकर बोला—चली जाओ न ; देखती आना ।

रबिया ने कहा—जाती तो ; लेकिन महारानीजी से डर लगता है कि

कहीं डाइन कहके बदनाम न कर दें । और तुम्हारा सपूत भाई भी कम नहीं है । ना, मैं नहीं जाऊँगी ; तुम्हीं जाओ ।

‘तुम्हारे जाने से लोग बुरा मानेंगे, तो क्या मेरे जाने से भला मानेंगे ?’

‘तो जाने दो, मगर चलो खा लो । ऐसे कब तक रहोगे ?’

‘जब तक मन करेगा ।’

‘भगवान् लोगों को दुःख देते हैं, तो क्या सभी खाना छोड़ देते हैं ? दुनिया का काम तो सभी को करना ही पड़ता है ।’

‘खाऊँगा तो ज़रूर ; लेकिन अभी भूख नहीं है ।’

रधिया निराश होकर चली गई । मुसाफिर वहाँ बैठा-बैठा क्या सोच रहा था, यह वही जाने ; लेकिन जब रात भीग गई, दस से ऊपर हो गये और रात्रि के सन्नाटे में कुत्तों का भूँकना जारी हो गया, तब मुसाफिर जगन के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया । दीवार से कान लगाकर, बहुत देर तक मैना की बोली सुनने की चेष्टा की ; किन्तु निष्फल ही रहा । अन्त में निराश होकर घर लौट आया और चुपचाप सो गया ।

मैना तीन-चार दिनों तक तो बुखार में डूबी रही, पाँचवे दिन सन्निपात हो गया । बचने की आशा जाती रही । मुसाफिर यह सब सुनता था और मन-ही-मन हाय करके रह जाता था ।

आखिर एक दिन मुनिया के क्रन्दन से जगन का घर गूँज उठा । मुसाफिर के हाथ-पाँव फूट गये । वह पागल की तरह दौड़ा हुआ जगन के आँगन में पहुँच गया । घबराया हुआ बोला—जगन, जगन, क्या हुआ ?

जगन रोता हुआ घर से निकला—मैया, हम लुट गये, मैया, मैना !.....

मुसाफिर भी कातर भाव से हाहाकार करके रो उठा, हाय मेरी बेटी !...

जब लोग मैना की लाश को उठाकर ले चले, उस समय मुनिया भी सिर के बाल खोले पागलों की तरह रोती हुई जा रही थी । हाय रे ! मेरी भली-सी बच्ची को लेकर तुम लोग कहाँ जा रहे हो ? लाओ, उसे मुझे दे दो, वह दूध पीकर चुपचाप सो जायगी । हाय रे, मेरी बच्ची !...सुनो... सुनो तो.....

इसी समय रघिया अपने घर से दौड़ती हुई निकली और मुनिया को पकड़ लिया। उसे अपनी छाती से लगाकर बोली—न रोओ बहन, न रोओ ! भगवान् ने हम लोगों को दुःख दिया है, तो सहना ही पड़ेगा।

उस समय तक शव ले जानेवाले आँखों की ओट हो चुके थे।

प्यासी हूँ

कोई बारह बज चुके थे। दुनिया के पर्दे से स्वप्न की रानी भाँक रही थी—विजेता की भाँति, उसके नूपुर के मिलन-गीत से पृथ्वी मूर्छित-सी होती जाती थी।

वकील वेशव के उस बड़े मकान के सभी कमरों की बत्तियाँ बुझ चुकी थीं, केवल सहाना का कमरा तब भी बिजली-शिखा से उज्ज्वल हो रहा था। मल्लमल के काउच पर कुत्ते के बच्चे को लिये वह बैठी थी। पलंग के सफेद रेशम के बिस्तर को किसी ने छुआ तक नहीं था, गुलदस्तों के फूलों की मीठी सुगन्ध से कमरे की हवा व्याकुल हो रही थी। गुलाबजल से बसे पान के बीड़े आनादर से रकाबी पर ही सूख रहे थे, दीवाल पर के आयल-पेंटिंग चित्रों के नीचे की दीप-शिखाएँ उस गहरी रात में कुछ म्लान-सी हो रही थीं, शायद नींद से उनकी आँखें भी अलसा रही हों; किन्तु उसकी पलकों में नींद की एक हलकी-सी छाया भी न थी। वह उस बच्चे को सुला रही थी परम आदर के साथ। कभी उसे आदर, प्यार, सोहाग से बेचैन कर देती, तो कभी उसे हृदय से लगाती, मुँह चूमने लगती। वह भूँ बैठी थी पति के अस्तित्व को, जो कि कुछ ही दूर आराम कुर्सी पर अधलेटे हुए नारी-हृदय की माता की प्यास को, मातृत्व का बुभुक्षा को अपलक नेत्रों से देख रहा था। उसकी दृष्टि जीवन्त विस्मय से विमूढ़ हो रही थी। मुकदमे के कागज वैसे ही इधर-उधर पड़े थे, उस ओर ध्यान देने योग्य उस समय उसके मन की स्थिति नहीं थी।

आज अचानक नहीं, परन्तु कई दिनों से केशव शायद अपनी भूल कुछ-कुछ समझ रहा था। एक अनजान दर्द, एक अरिचित्त अभाव से वह कभी

बेचैन हो जाता, चेष्टा करने पर उसकी समझ में बात नहीं आती कि वह व्यथा, वह अभाव किस लिए और क्यों है ? वह अनजान-सा बना रहता ।

पत्नी का दीर्घ श्वास, कुत्ते के प्रदि उसकी वह लालायित दृष्टि केशव के अन्तर के किसी गोपनीय अंग में आघात कर बैठो, जुहो क. भाड़ी आँखों के सामने से हट गई, मोती-जैसे फूल बिखर गये । गत-गदवस के वे रंगीले दृश्य चल-चित्र के समान सामने अड़ गये, जहाँ कि एक नारी रूप, रूप-गन्ध-गुण अपने सुगठित जीवन की मदिरा भरे कलस को लेकर उसी के घर तले बैठो वर्षों विनिद्र रजनी बिता दिया करती थी, नारी रूप-उपासक के पैरों में अपने श्रेष्ठ मातृत्व तक को न्योछावर करने में जिसने विचार तक नहीं किया था, पति की तुष्टि के लिए जिसके नयन, प्रत्येक रोम सदा खुशी का वर्षा किया करते थे, नूननत्व-विहीन सम्पूर्ण लुटी हुई नारी वह यही है । बाहरी जगत के तीव्र आकर्षण, करोड़ों कामों में पिसकर, जिसे कि आज बासी माला की तरह दूर फेंक देना पड़ा है, वह दूसरी नहीं—यही है—यही, यही । जिसे कि आज इस 'विलासिता के अन्दर तपस्विनी गौरी की तरह जागते ही रात बितानी पड़ रही है, कुत्तों और बिल्ली के बच्चों को लेकर मा का प्यास—केशव जबरन ही हँस पड़ा । अपने आपको डाँटने लगा—यह सब वह क्या सोच रहा था ? वह आश्चर्य में था कि ऐसे विचार उसके मन में उठे ही क्यों !

उस हँसी से सहाना चौंकी—अभी सोआगे ? बत्ती बुझा दूँ ?

‘नहीं, अभी कागज देखना है ।’

‘क्या रात-भर काम ही करते रहोगे ? दो बज रहे हैं ।’

‘किन्तु अभी तक तो तुम्हारे खेल को देख रहा था । बुढ़ापे में कुत्तों के पिल्लों से खेलते तुम्हें शर्म नहीं आती, लोग कहेंगे क्या ?’

सहाना ने सहमी हुई आँखें उठाई—उसकी मा मर गई है, बचा दिन-रात रोया करता है । आँसू छिपाने के लिए सहाना ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया ।

‘एक दिन मरना तो सबको है, फिर कुत्ते-बिल्ली के लिए यदि सभी आँसू बहा दोगी तो मेरे लिए बचेगा क्या ?’

‘तुम फिर वही बातें करते हो !’ उसने अभिमान से मुँह फेर लिया । बहुत दिनों के बाद पति के मुँह से उसी भूले-से परिहास को सुनकर वह विस्मित हो रही थी । गत प्रेम के दिनों का जीवन ही कितना था ! बूँद भर ओस, जुगनू की दीवट, फूल की पँखुड़ी की तरह छोटे, बहुत ही छोटे दिन, किन्तु उन छोटे दिनों की वह प्रेम-स्मृति सदाना के निकट अमर और अविनाशी थी ।

‘बहुत दिनों के बाद !’ उसने धीरे से कहा ।

‘मैं उन बातों को भूला नहीं हूँ सदाना ! किन्तु मैं कभी आश्चर्य करता हूँ, सोचता रहता हूँ कि जिस अन्तर में कभी दिन-रात प्रेम-प्यार की पुकार उठा करती थी, आज चेष्टा करने पर भी क्यों नहीं उठती ! शायद मेरा यौवन मर चुका हो ।’ केशव का स्वर दर्द से भरा हुआ था । सदाना हँसी, उस हँसी की जाति ही निराली थी ।

(२)

‘पूजा के कमरे में आज से तुम मत जाना दुलहिन !’ सदाना की सास नर्मदा ने कहा ।

फूल चुनते-चुनते वह बकी—क्यों अम्माजी !

‘सबेरे हलकू को दूध नहीं पिला रही थी ?’

‘वह रो रहा था ।’

‘साईस का लड़का रोये या मरे, अपने को क्या ! बड़े घर में आई हो, जात-पात का भी तो कुछ विचार किया करो । कहाँ वह जैसवारा और कहाँ हम ब्राह्मण ! कुत्ते-बिल्ली दिन-भर लिये रहती हो, मेरे हज़ार सर पीटने पर भी मानती नहीं । दिन-पर-दिन तुम दूँ होती जाती हो । ऐसा अनाचार मैं सह नहीं सकती हूँ ।’

उत्तर देने के लिए सदाना के कंठ में शब्दों की भीड़-सी लग गई । किन्तु फिर भी उसका उत्तर संक्षिप्त ही हुआ—वह छः महीने का अबोध शिशु है अम्माजी ! मरते वक्त दुखिया बच्चा मुझे सौंप गई थी ।

‘आज जैसवारा तो कल मेहतर के बच्चे को उठा लाना । मेरे रहते इस घर में तेरा अधिकार ही कौन-सा है ! मेरे मत के विरुद्ध यहाँ कोई

काम नहीं हो सकता है। उसे अभी दूर कर दे।' गृहिणी झुँझला पड़ी।
'नहीं।'

'क्या नहीं!'

'नहीं।'

नर्मदा के चिल्लाने से केशव भीतर आ गया—'क्या है?'

'भैया, मुझे तू काशी पहुँचा दे।'

'क्यों मा?'

'क्योंकि मैं नौकरानी बनकर नहीं रह सकती हूँ। तुम्हीं से पूछती हूँ—
घर की मालकिन बहू है या मैं?'

केशव को चुप रहते देखकर माता जल उठी—'कहो, मैं तुमसे सुनना
चाहती हूँ।—माता ने अपना प्रश्न दुहराया।

'तुम्हारे रहते हुए तो दूसरी कोई मालकिन बन नहीं सकती। परन्तु उसे
भी तुम्हीं लाई हो, और अधिकार भी दिया है।'

केशव की पूरी बातें सुनने का धीरज उस समय गृहिणी में था नहीं।
नर्मदा ने कहा—'तो तुम्हारे राज में आज क्या चुमार-भंगी के साथ बैठकर
खाना पड़ेगा?'

'ऐसा करने को तुमसे किसने कहा?'

'तुम्हारी पत्नी ने। सबेरे से दुखिया के लड़के को उठा लाई है। कहती
है, उसे रखूँगी।

'क्या यह सच है?'

'हाँ! उसकी मा मुझे सौंप गई है।'

'किन्तु वह जैसवारा का लड़का है। इस घर में उसकी जगह कैसे हो
सकती है सहाना?'

'जैसवारे के घर में जन्म लेना, क्या उसका अपराध है?'

उत्तर दिया नर्मदा ने—'ऊपर से लगी जवाब-सवाल करने! तेरी हिम्मत
देख-देखकर मैं अवाक् होती हूँ। दूसरी सास होती तो तुझ जैसी बाँझ का
बुढ़ भी न देखती।'

व्यथा से उसका चेहरा पीला पड़ गया। अपने को संभालकर सहाना

ने कहा—मैं आप से नहीं, उनसे पूछती हूँ, कि यदि आत्मा अमर है, ईश्वर का अंश है, और सभी में उसी एक पावन आत्मा का प्रकाश है, तो यह छुआ-छूत का प्रश्न उठा ही क्यों और कैसे ?

‘लोकाचार है, समाज का नियम है । जब कि उसी समाज में हमें रहना है, तब उसके नियमों को मानना भी जरूरी बात है ।’

‘मैं कब कहती हूँ कि तुम निराले समाज में चले जाओ । किन्तु पुराने की महिमा में मग्न होकर उसके कीचड़ को सन्दूक में भरकर रखने में कोई पौरुष, कोई श्लाघा नहीं है । प्रकृति के नियम से नित नई वस्तु बनती और मिटती हैं । पुराने में जो भली वस्तु है उसका सम्मान और रक्षा हम अवश्य ही करेंगे । परन्तु बुढ़े को सदा त्यागने के साहस की कमी हममें कभी न हो, यह प्रार्थना मैं ईश्वर से किया करती हूँ ।’

‘तो तुम इस नियम को खराब कहती हो ?

‘द्विज वार । आदमी आदमी को घृणा करता, यह निरी पहेली ही नहीं, अपराध भी है ।’

‘मैं घृणा की बात नहीं कहता, केवल मा के सम्मान के लिए तुम बच्चे को हटा दो, सहना !’ वह डर रहा था—‘क्योंकि स्वाधीन स्वभाव की पत्नी को वह भली भाँति पहचानता था—‘नहीं’ कुछ देर सोचने के बाद उसने कहा—‘नहीं, यह असंभव है, तुम्हारे और मा के सन्तान, सम्मान के लिए अपने प्राण न्योछावर कर सकती हूँ, पर दूसरे के नहीं, और न उस वचन को तोड़ ही सकती हूँ, जो कि उसकी मरनमेज पर मैं दे चुकी हूँ ।’

‘सहाना, आज इस जीवन के अन्त में तुम मुझसे क्या सुनना, क्या कहना चाहती हो !’

‘कुछ भी नहीं ।’ उसने बालक को छाती से लगा लिया । जाते समय कहती गई—बच्चा भूखा है । इसे दूध पिलाकर फिर तुम्हारी बातें सुनूँगी ।

माता-पुत्र स्तंभित-से खड़े रह गये ।

(३)

‘सहाना, आलमारी की चाभी देना, कागज निकालना है ।’ मन्दिर के द्वार पर केशव ने पुकारा ।

कटोरे मे चन्दन पोंछकर शीला लौटी । एक-दूसरे की ओर देखने लगे ।
उन दृष्टियों में प्रश्न था—तुम कौन हो, कहाँ से आये ?

उसी दिन से सहाना का मन्दिर में जाना तथा रसोई आदि में जाना—
नर्मदा देवी ने बन्द कर दिया था । ये बातें केशव जानता नहीं था, ऐसा नहीं ।
कदाचित् अभ्यासवश फिर भी वह उस दिन मन्दिर-द्वार पर खड़ा हो गया ।
उसे स्मरण हो आया कि रात में इसी शीला की बात सहाना कह रही थी ।
वह नर्मदा की अनाथ ज्ञाती कन्या थी, अविवाहिता थी । नर्मदा ने उसे बुला
लिया था ।

‘चाभी तो मेरे पास नहीं है । मैं शीला हूँ । कल यहाँ आई हूँ ।’

इस तर्कणी की संकोचहीन बातों से केशव कम विस्मित न हुआ । वह
उन आयत नयनों के सामने संकुचित हो रहा था । बोला—‘अच्छा तो मैं
जाता हूँ ।’ किसी तरह इतना कहकर वह भागा ।

भोजन के आसन पर बैठकर केशव विरक्ति से यहाँ-वहाँ निहारने लगा ।
शीला थाली और कटोरो को रखकर पंखे से मक्खी भगाने लगी । रसोई
ब्राह्मण बनाता था । किन्तु भोजन के समय सहाना सामने बैठती थी, दो-चार
तरकारियाँ भी पति के लिए अपने हाथ से बनाया करती थी । परन्तु स्लूक के
आने के बाद से गृहिणी उसे दूर रखकर स्वयं उन कामों को कर लिया
करती थी और आज उन्होंने शीला को अपना स्थान सौंप दिया था ।

‘केशव, करेले कैम बने हैं ?’ माता सामने आकर खड़ा हो गई ।

‘अच्छे ।’

‘शीला ने बनाये हैं । बड़ी काम की लड़की है और वैसी ही नम्र-शान्त
भी है । मैं जिस काम का कह देती हूँ उसे जी खोलकर करती है । आलू के
बरे भी उसीने बनाये हैं, अच्छे बने हैं न ?’

‘हाँ ।’

‘क्यों झूठ बोलते हैं ! आपने उन्हें झूठा तक नहीं ।’—शीला हंस पड़ी ।
अप्रस्तुत होने के साथ-ही-साथ शीला के सरल व्यवहार से केशव सन्तुष्ट
भी हुआ ।

‘शीला सच कह रही है मैया ! तुमने तो आज कुछ नहीं खाया ।’

‘खराब बना होगा ।’

‘नहीं-नहीं, सब चीजें अच्छी बनी हैं । भूख नहीं है ।’

‘फिर भी आप झूठ कहते हैं । मैं कहती हूँ मौसी, भौजी को बुला लो, अभी ये भरपेट भोजन कर लेंगे ।’

इस तरुण्यो की मुँहपर सच कहने की शक्ति को देखकर केशव मन में उसकी प्रशंसा करने लगा ।’

‘ऐसा तो नहीं हो सकता शीला कि मेरे जीते-जी घर में भंगो-बसोरो का निवास हो जाये । बहू घर की लक्ष्मी कहलाती है, वही यदि अनाचार करने लगे, तो उस घर की भलाई कब तक हो सकती है ! एक तो इस वंश का ही नाश होने बैठा है । एक बच्चा तक नहीं हुआ । वंश-रक्षा करना एक जरूरी बात है । किन्तु कोई सुनता ही नहीं । मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने हाथों अपना सर पीट लूँ ।’

एक अनजान के सामने इन बातों की अवतारणा से केशव चिढ़ रहा था, फिर भी उसने हँसकर कहा—तो अपना सर पीटकर ही देख लो ।

‘क्या दाँत निकालते हो भैया, मेरा तो जी जला जाता है । उसी की बात सब कुछ हो गई और मेरी बात को कोई पूछता तक नहीं ।’

‘ऐसा तो नहीं है मा !’

‘फिर तू ब्याह क्यों नहीं करता !’

‘विवाहित हूँ ।’

‘इससे क्या हुआ । वंश-रक्षा के लिए लोग जाने कितने विवाह करते हैं । किन्तु इधर तो उसने सौगन्ध रख दी है ; मा की सौगन्ध को कौन मानता है ।’

‘उसने मुझमें कभी कुछ नहीं कहा, यह विचार तुम्हारा गलत है । उसका मन छाटा नहीं है, मा ! वह तुम्हारे विरुद्ध कभी कुछ कहती नहीं ।’

‘अरे, मैं सब कुछ जानती हूँ । आज वही तो तेरी सब-कुछ है । एक दिन वह था, जब कि इस बुढ़िया के बिना तेरा दिन कटना मुश्किल था । तेरी आँखों के सामने वह तेरी ही मा का अपमान करे ! एक जैसवारे के

लड़के को घर में रखे, दिन-भर गोद में लिये रहे और तू औरतों-जैसा देखता रहे। धिक्कार है ऐसी जिन्दगी पर !'

वेशव आसन पर से उठ पड़ा।

'तुमने ऐसा क्यों कहा मौसी, उन्होंने खाया तक नहीं।'।

'क्या मैं चुपचाप यह सब सह लूँ ?'

'किन्तु तुमने मेरे सामने क्यों कहा ! यही बात उन्हें बुरी लगी।'।

'तुमसे सच कहती हूँ शीला, केशव ऐसा नहीं था, बहू ने उस पर जादू किया है।'।

इस बार शीला अपनी हँसी न रोक सकी। वह हँसते-हँसते लोटने लगी।

'तू हँसती क्यों है ? इसमें हँसने की कौन सी बात है ?'

'तुम अन्धेर करती हो मौसी, भला जादू भी कोई चीज़ है ! फिर भोजी के लिए तो ऐसे विचार भी नहीं उठ सकते, उनकी बातचीत की रीति, उनकी शिक्षा ही निराले ढंग की है, वे हज़ारों में एक स्त्री हैं।'।

'तू भी ऐसा कहती है, शीला ! मैं तुम्हें अपना समझे हुए थी। मेरा भाग्य ही ऐसा है।'।

शीला नर्मदा के गले से लिपट गई—'नाराज़ हो गईं मौसी ?

(४)

मल्लार रागिनी का आलाप लिये वर्षा तब पृथ्वी के सिरहाने उतर आई थी। घर-द्वार और तरु-पल्लवों में उसके पैरों की हरियाली छाप पड़ने लग गई थी। उस हरियाली ने बूढ़े बट के नीरस हृदय तक को सजीवता के साथ-ही-साथ रसपूर्ण भी कर दिया था। वर्षा की इस अलसाई हुई सन्ध्या ने केशव के निद्रालु चित्त में नवीनता का मोहक मन्त्र फूँक दिया। वह धीरे-धीरे सहाना के कमरे की ओर बढ़ा। बहुत दिनों के बाद द्वार की आंर पीठ किये वह आईने के सामने खड़ी बालों को सँवार रही थी। बालों के गुच्छे कमर पर लहरा रहे थे। साड़ी का आंचल जमीन पर लोट रहा था। उसके आंठों पर हल्की-सी मुस्कान थिरक रही थी—वहाँ रूप-यौवन की गर्वीली मुस्कान।

'सहाना !' उसकी पीठ पर हाथ रखकर प्यार से केशव ने पुकारा।

'आप ?' चंचल हरिणी की तरह वह लौटकर खड़ी हो गई।

‘तुम तो शीला हो ! सदाना—मेरी सदाना को तुम लोगों ने कहाँ भगा दिया ?’

‘मैंने !’ किन्तु दूसरे पल शीला सहमकर बोली—‘वे तो घर ही हैं, नीचे कुछ कर रही हैं ।’

‘फिर तुम उसके कमरे में, उसी की तरह इस आईने के सामने क्यों खड़ी थीं ?’

शीला के लिए यह एक अद्भुत प्रश्न तो था ही, और जो कुछ था, वह था अपमान और तिरस्कार । फिर भी उसकी शिक्षा ने उसे आपे से बाहर होने से रोका । कौन-सी भयानक स्थिति ने केशव जैसे गभीर प्रकृति के मनुष्य को इस तरह विचलित कर दिया है ?—इस बात को साचकर शीला सिहर उठी । वह हट गई ।

केशव पत्नी के सामने जाकर खड़ा हो गया—एक दीर्घ श्वास की तरह—कहाँ थीं तुम ?

सदाना जल्दी से हलकू के उन नन्हें, प्यारे हाथों को छोड़कर ज़रा हट आई । वह जानती थी कि उसी दुःखी, असहाय शिशु को लेकर उसकी गृहस्थी में कैसा तूफान उठा हुआ है ।

‘तुम मेरे साथ-साथ रहा करो सदाना ।’

पति की उन व्याकुल बाँहों में अपने को सँपकर वह उसका मुँह निहारने लगी । समुद्र सा अथाह विस्मय उसके सामने था । बच्चा रोने लगा । इतनी देर के बाद केशव की दृष्टि हलकू पर पड़ी—इसी के लिए आज तुम मुझे भूल रही हो ! मेरी यह दशा हो रही है ? सारे अनिष्ट की जड़ यही है । अच्छा ठहरो ! केशव ने बालक को उठा लिया । शायद उसे फेंकना चाहता हो ।

उन्मादिनी का भाँति सदाना ने बालक को छीन लिया । अपनी छाती से उसे लगाकर वह हाँफने लगी ।

‘उसे दे दो सदाना, वरना आज मुझे कठोर बर्ताव करना पड़ेगा ।’

‘नहीं, नहीं, मेरे बच्चे का खून मत करो । पहले मुझे मार डालो ।’ वह बच्चे को गोद में लेकर फ़र्शी पर बैठ गई ।

केशव को ज़िद-सी हो गई—मैं उसे लेकर ही छोड़ूँगा । वह उसे छीनना

चाहने लगा । सहसा उसकी आँखें सहाना की आँखों से मिल गईं । सहाना को उस दृष्ट का वह सह न सका—यह कैसी रिक्त, सर्वशांत दृष्टि है ! केशव सिहर उठा । उसके हाथ अपने-आप रुक गये । हृदय में प्रश्नों की झड़ी-सी लग गई—वह जो गतयोजना, रूपवती नारी मद के रूप की प्यास को बुझाने के लिए आज सब कुछ खो बैठी है, उसके जीवन के लंबे अनमोल दिन क्या योही दीर्घ श्वास की नाईं छोटे-से पल में उड़ जायेंगे ? जिसके अणु-परमाणु माता होने के लिए सृजे गये थे ; उसे व्यर्थ करने का अधिकार क्या दुनिया में किसी को भी था ? शायद जीवन के आरंभ में ही वह पावन दीप जलाये सन्तान की प्रतीक्षा में बैठी थी, उसकी उस प्रतीक्षा को निष्फल किसने किया ? पति के अभिमान से अन्धा बनकर उसके शुद्ध, सुन्दर मातृत्व को छीन लेनेवाला वह राक्षस कौन था ? कठोर तपस्या शेष कर जीवन की सन्ध्या-वेला में जो रमणी भिखारिन की तरह सन्तान की भीख माँग रही है, उसकी भिक्षा की भोली आज वह किस चाँज से भरेगा ?

माता की वह मरुभूमि की-सी तृष्णा को वह किस तरह तृप्त करेगा ? उसकी उस ज़रा सी शान्ति, सन्तोष उस अभाग बच्चे को छीनकर क्या, पतिपूजा का पुरस्कार क्या वह इसी तरह देगा ? केशव की चिन्ता में बाधा पड़ी । सहाना ने बच्चे को उसके पैर तले डाल दिया—नो, लेते जाओ, आज मैं इसे तुम्हीं का सौंरती हूँ । दोनों हाथों से सहाना ने अपना मुँह ढाँप लिया । केशव ने एक बार पत्नी की ओर और दूसरे बार बच्चे को देखा, फिर हलकू को धीरे से उठाकर सहाना की गोद में डाल दिया ।

(६)

जिस दिन उस बालक का अन्त हो गया, उस दिन सहाना को आँखों में पानी की एक छोटी-सी बूँद तक नहीं थी । दिन एक-सा बहने लगा, सहाना के अन्तर का परिवर्तन बाहरी जगत से छिपा ही रह गया, शायद जीवन भर के लिए । वह सब कामों में योग देती और पति से हँसकर बातें भी करती, केवल दिन में एक बार वह उस नन्हें बच्चे के चित्र को आँखों से लगा लेती ।

जिस दिन उसकी वह चोरी पकड़ी गई, उस दिन केशव ने विरक्त हाकर

कहा—बुढ़ापे में क्या तुम पागल हो जाओगी ? धूमकेतु यदि मरा भी तो निशानी छोड़ गया ।

‘छिः, मरे हुए का ज़रा-सा सम्मान करना सीखो । उसकी भी आत्मा थी ।’ सहाना के कंठ में तिरस्कार था ।

‘ऐसा ! तो उस कमीने के लिए आँसू भी बहाना पड़ेगा ?’

‘फिर इससे तुम छोटे न हो जाओगे ।’

‘और कुत्ते-बिल्ली के लिए किस दिन आँसू बहाना होगा सो भी कह दो ।’

सहाना ने उत्तर नहीं दिया । इन बातों का वह जवाब ही क्या देती ?

‘अब जवाब क्यों नहीं देती ?’

‘क्या इन बातों का उत्तर भी देना है ? और मुझी को ?’

उन शब्दों में कौन-सी सम्मोदनी भरी थी, सो तो केशव ही जाने, किन्तु इसके बाद मारे लज्जा के उसकी आँखें भुक गईं । पिछली बातों के स्मरण से शायद उसके मन में अनुताप की छाया-सी पड़ी, किन्तु दूसरे क्षण वह बलात् ही अस्वीकार करने लगा—वह तो होनहार था ।

फूट से समझौता करते-करते लोग अपने जीवन की न-जाने कितनी अनमोल वस्तुओं को खो बैठते हैं, और शायद इसी से केशव फिर मिथ्या से समझौता करने लग गया ।

‘तुम बैठी फोटो देखती रहो । और मैं भूखा प्यासा बैठा तुम्हारा मुँह निहारता रहूँ । यही कहना चाहती हो न ?’

‘मैं तुमसे कुछ भी कहना नहीं चाहती । भोजन कर लो ।’

‘घन्यवाद ! इतनी देर के बाद याद भी तो आया ।’

वह कह सकती थी कि आजकल भोजन छूने का अधिकार उसे नहीं है । कह सकती थी, अब उसके बदले शीला उन कामों को किया करती है; परन्तु नहीं, उसने कहा कुछ नहीं । चुपके से बाहर निकल गई ।

‘आइए ।’—शीला ने पुकारा ।

केशव के कानों में अमृत की वर्षा हो गई—कैसी दर्द-भरी पुकार है—मन में कहा केशव ने ।

आसन के आगे मिठाई की रकाबी रखे बैठी थी शीला—उसी की प्रतीक्षा में । केशव का अन्तर-बाहर आनन्द, सन्तोष से भर उठा । सारे दिन परिश्रम के बाद घर में भी शान्ति नहीं मिलती थी । उस तरुणी की सेवा, सदानुभूति से केशव बिछुड़े हुए दिनों की उसी खुशी के समुन्दर में लहराने लगता था, थोड़ी देर के लिए ।

गरम-गरम कचौड़ी रकाबी में डालकर शीला ने कहा—इनमें से एक भी न बचे, वरना दण्ड भुगतना पड़ेगा ।

केशव ने शीला की ओर देखा, उस तरुणी के सारे अङ्गों से खुशी का झरना-सा झरता पाया ।

‘कौन-सी सजा मिलेगी शीला !’ कौतुक से केशव ने पूछा ।

‘फिर इतनी ही कचौड़ियाँ और भी खानी पड़ेंगी ।’

‘यदि न खा सकूँ ?’

‘तो इसी तरह रात-भर बैठे रहना पड़ेगा ।’

‘तुम मेरे सामने रहोगी न शीला ?’

‘जाइए !’ ये मीठे शब्द बहुत ही मीठे ढङ्ग से कहे गये ।

केशव चौंक पड़ा और उसके बाद वह एकदम उठकर भागा—चोरो की तरह ।

आकुल विस्मय से शीला उसे निहारती ही रह गई ।

सहाना ने धीरे से पति के सिर पर हाथ फेरा, पूछा—इस समय तुम सोये क्यों, जी खराब तो नहीं है ?

‘सहाना, तुम्हीं मेरी सहचरिणी हो और तुम ही रहोगी ।’ दोनों हाथों से सहाना का हाथ पकड़कर वह बार-बार कहने लगा ।

सहाना धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगी ।

‘क्या वे पुगने दिन नहीं लौट सकते, सहाना ?’

सहाना का हृदय व्यथा से विकल हो पड़ा ।

‘कहो सहाना, जवाब दो ।’

‘तुम्हारे दर्द को मैं और भी बढ़ाना नहीं चाहती ।’

‘समझा नहीं’—केशव ने कहा ।

‘तुम ज़रा चुपचाप सो जाओ, जी ठीक हो जायगा ।’

‘नहीं, नहीं, मुझे कहने दो, सदाना—सदाना—!’

‘मैं जानती हूँ ।’

‘तुम ! तुम—जानती हो ! क्या जानती हो !’ विराट् विस्मय से केशव की आँखें विस्फारित हो रही थीं ।

‘सब बातों को । किन्तु तुम्हारे मुँह से सुनना नहीं चाहती ।’ वह हँसी ।

केशव का सिर अपने आप झुक गया ।

‘कबसे जानती हो !’—देर के बाद केशव ने पूछा ।

‘बहुत दिनों से ।’

‘तुमने मुझे सावधान क्यों न किया ? मुझे अपनी बातों में खींच क्यों न लिया ?’

‘जबरन भी ? किन्तु नहीं ; मैं ऐसा नहीं कर सकती थी । वैसी भीख की भोली से मैं घृणा करती हूँ—आन्तरिक घृणा । प्रेम-प्यार आदर की वस्तु ज़रूर है, परन्तु माँगने की नहीं । उसके लिए दूसरे से झगड़ना, छिः ! छिः !’

सदाना घृणा से सिहर उठी ।

‘तुम पत्थर की बनी हो सदाना !’

‘होगा भी ।’—उदास स्वर से उसने कहा ।

‘अपना अधिकार मैं इस अवहेलना से नहीं छोड़ सकता था ।’

‘अवहेलना ! नहीं, घृणा कह सकते हो । मैं कहती थी, ये सब बातें तभी उठ सकती हैं, जब कि अधिकार को कोई छोड़ देता !’

‘फिर यह क्या है !’

‘जो प्रेम एक बार किसी के द्वार पर लुट चुका था, वही प्रेम यदि आज प्रतारक की तरह दूसरे के द्वार पर झाँकने लगे, तो उसके लिए सिर पीटने की ज़रूरत नहीं है । अधिकार मन की चीज़ है । प्रेम के उस अधिकार को छीन लेने की शक्ति विधाता को भी नहीं है, फिर हम तो आदमी ही ठहरे !’ सदाना उठी—अब मैं जाती हूँ, काम पड़ा है ।

(६)

काम करते-करते शिशु कंठ के मीठे गीत से अनमनी सी सहाना द्वार पर आकर खड़ी हो गई ।

गीत गा-गाकर नन्हें-नन्हें बच्चे देश के लिए भीख माँग रहे थे । सहाना पलकहीन नेत्रों से उन्हें देखने लगी ।

‘माताजी !’ एक ने पुकारा ।

‘इन भोलियों में कुछ डाल दो माताजी !’ दूसरा बोला ।

सहाना ने एक सुन्दर शिशु को गले से लगा लिया, बोली—क्या कहाँ भैया, फिर कहना ।

‘इन भोलियों में कुछ डाल दीजिए ।’

‘नहीं-नहीं, उसी तरह फिर पुकारो ।’

‘माताजी !’

‘और छोटे शब्दों में ।’

‘मा !’

‘फिर पुकारो !’

‘मा—मा !’

वह कान लगाकर सुनने लगी—मा—मा ! एक स्वप्न-मा आँखों में छा गया—जैसे कि उसने अपने हृदय के खून—उस प्यारे बच्चे को देश के काम में सौंप दिया हो । सहाना देखने लगी—उसके उस देश-सेवा के श्रेष्ठ दान से, उस दृष्टान्त से प्रत्येक माता ने अपनी गोदी खाली कर दी । वह विस्मय के साथ देखने लगी—जल, वायु, आकाश शिशुओं से छा रहा है, तिल बराबर भी कहीं स्थान नहीं है । ‘यह कैसा विराट् रूप है !’ वह कह उठी ।

‘सहाना !’—पति की पुकार से वह स्वप्न-लोक से लौटी ।

उसने उत्तर दिया—हाँ ।

उस दृष्टि को केशव सह न सका । वह किस उद्देश्य से किसके पास आया है ?—उसकी चिन्ता विकल हो पड़ी—मा से आज वह प्रेयसी को माँग रहा है ! एहिणी के नयनों में वह तरुणी की व्यास को देखना चाहता है ! सेविका से वह सोहाग माँगता है ! हाँ—इतने दिनों के बाद । केशव समझ ही न

सका कि उसी के अनादर, अवहेलना से उसकी प्रेयसी मर चुकी थी—बहुत दिन पहले । और उसी नारी के भीतर अब जो कुछ था—वह था केवल मा का गंभीर स्नेह, और सुन्दर-सा प्यार ।

कुछ विचारता हुआ केशव शीला के निकट आकर खड़ा हो गया ।

‘आइए । भूख लगी है क्या ?’—नदी के-से तरल स्वर से उसने पूछा ।

केशव मुख विस्मय से उसे निहारने लगा । और दृष्टि के आगे शीला झिलझिल पड़ी ।

‘मैं तुम्हीं को ढूँढ़ रहा था शीला ।’ केशव का स्वर मृदु था ।

नर्मदा ने पुकारा—भैया, ज़रा सुन जाना ।

रात में सहाना ने केशव के कागज़ों को हटाकर किसी प्रकार की भूमिका के बिना ही कहा—शादी के लिए और तैयारियाँ तो मैंने कर ली हैं, केवल गहने तुम बनवा देना ।

‘किसकी शादी ?’

‘शीला की ।’

‘वर कहाँ मिला ?’ उसका कण्ठ काँप रहा था ।

कुछ देर तक पति के मुँह की ओर देखकर सहाना ने उत्तर दिया—
वह घर ही में है ।

‘और मैंने उसे नहीं देखा ?’

‘मैंने जब देखा है, तब तुम भी देख चुके हो !’

‘याने ?’

‘तुम हो !’

‘मैं, मैं !’ वह पीछे हटा ।

‘हाँ, तुम !’

‘यह दिल्लीगी अच्छी नहीं लगती, सहाना ।’

‘दिल्लीगी नहीं, सच ही कहती हूँ, इसी पन्द्रह तारीख को शादी होगी ।’

‘असंभव है ।’

‘ऐसा मत कहो—सभी तैयारियाँ हो चुकी हैं ।’

‘ऐसा तुमने क्यों किया सहाना ?’

‘क्योंकि इसकी ज़रूरत थी ।’

‘फिर भी यह नहीं हो सकता है, इससे न तो मेरी ही मलाई है और न तुम्हारी, किसी के लिए कभी भी मैं तुम्हें दुःख नहीं दे सकता ।’

‘तुम भूल रहे हो, तुम्हारे सुख के लिए मैं सब कुछ सह सकती हूँ, विशेषतः मेरे उस गत आनन्द की स्मृति को दुःख की शिखा जला नहीं सकती है, तुम विश्वास रखो ।’

‘किन्तु मैं तुम्हीं से पूछता हूँ कि तुम जैसी छी रहते हुए भी मैं कल ही क्यों ?’

‘अपने मन से पूछो ।’ वह हँसती थी ।

‘मैं न तो कुछ सुनना चाहता हूँ और न कुछ पूछना, किन्तु यह विवाह हो नहीं सकता । सच कह रहा हूँ । वर के लिए सोचने की आवश्यकता नहीं है, उसी दिन वर तुम्हें मिल जायेगा ।’

शीला ने पुकारा—मौजी, चाय तैयार है । केशव ने सिर नीचा कर लिया, आज वह उस ओर देख तक नहीं सकता था ।

(७)

उस घनी परिवार के नौकरों से लेकर मात्निक तक उस दिन व्यस्त थे । बाहर से शहनाई मधुर स्वर से मिलन-गीत अनाप रही थी । गलियों में चादर बिछ रही थी । पानी के मटकों में गुलाब-जल मिलाया जा रहा था । बड़ी-बड़ी कढ़ाइयों में शाक-भाजी बन रही थी । हलवाई मिठाई बना-बनाकर बूढ़े-पुरानों को चखा रहे थे । सदाना और केशव धूम-धूमकर सब व्यवस्था कर रहे थे । शीला की शादी थी, एक घनी वर के साथ । बचं आँगन में धूम मचा रहे थे ।

चहुँ ओर के उस आनन्द के भीतर लहराती हुई नदी की भाँति शीला हँस-हँस अपनी सखी-सहेलियों से मिल रही थी—स्त्रियों के बीच में उसकी समालोचना हो रही थी । ‘कैसी बेहया है ! बहन, आजकल की लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं । बूढ़ी हो जाती हैं तब कहीं दुल्हा मिलता है, इसलिए वे अपने आनन्द को छिपा नहीं सकती ।’

शीला ने एक छी को चिढ़ूटी ले ली ।

‘तुम्हारा को चिढ़ेंटी ले जाकर, मुझे नहीं।’ स्त्री ने कहा।

‘उन्हें तो रात में लूँगी!’

‘कैसी बेदया है तू शीला! तुझे लजा-दया कुछ भी नहीं।’

स्त्री की भाँहें चढ़ गईं, जिसे देखकर शीला खिल-खिलाकर हँसने लगी। चलते-चलते वेशव लौटा। पल-भर के लिए उस खुशी की दिवाली की ओर उसने देखा, फिर काम में डूब-सा गया। केवल सद्धाना उस हँसी को सुनकर सिहर उठी।

सन्ध्या-समय बनाव-शृङ्गार शेष कर शीला दबे पाँवों उस द्वार के बाहर जाकर खड़ी हो गई, जहाँ कि केशव द्वार की ओर पीठ किये चुपचाप खड़ा कुछ विचार रहा था। वह कुछ देर तक खड़ी उसे देखती रही, इसके बाद उसने वहीं से केशव को प्रणाम किया। केशव लौटा, उसने देखा एक छाया सामने से दृष्ट रही है।

व्यथा के साथ केशव ने पुकारा—शीला! परन्तु उत्तर न मिला।

‘भ्रम था!’—दीर्घ श्वास के साथ ये शब्द उसके कंठ से निकले।

बड़ी धूम से बारात आई। कन्यादान के समय शीला को लोग ढूँढ़ने लगे। किन्तु उसका पता कहीं भी न था। घर, द्वार, हर एक सन्दूक देखी गई, शीला न मिली।

दो बूँद आँसू पोंछकर सद्धाना ने अश्रुवार में विज्ञापन दिया—शीला, तुम लौट आओ, इस घर में तुम्हारा निरादर न होगा।

पगडण्डी

तब मैं ऐसी नहीं थी। लोग समझते हैं, मैं सदा की ऐसी ही हूँ—मोटी, चौड़ी, भारी-भरकम; क्षितिज की परिधि को चीरकर, अनन्त को सान्त बनाती, संसार के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक लेटी हुई। वह पुराना इतिहास है। कोई क्या जाने!

तब मैं न तो इतनी लंबी थी, न इतनी चौड़ी। न चेहरे पर हँटों की सुर्खी की ललाई थी, न शरीर पर कंकड़ों के गहने। मेरे दाँयें-बायें वृक्षों की जो ये क्रतारे देख रहे हो, वे भी नहीं थीं, न फुट-पाथ था, न बिजली के

खमे ; अप्सराओं की-सी सजी न ये दूकानें थीं, न आँगूठी के नगने की तरह ये पार्क। तब मैं एक छोटी-सी पगडण्डी थी—तुबली, पतली, सुकुमार, नटखट !

कब से मैं हूँ, इसकी तो याद नहीं आती ; किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अमराई के इस पार की कोई तरुणी नदी से जल लाने के लिए उस पार गई होगी ; जैसे किसी छोटी-सी नगण्य घटना के बाद किसी प्रथा का जन्म हो जाता है, और उसके बाद फिर एक धर्म भी निकल पड़ता है ; उसी तरह एक तरुणी के जल भर लाने के बाद गाँव का सारी तरुणियाँ घड़े में जल लेकर अटकती, इठलाती एक ही पथ से आती रही होगी और फिर वहीं से मेरे जीवन की कहानी बढ़ निकली ।

मेरे अतीत के आकाश के दो तारे अब भी मेरे जीवन के सुनेम की आंधियारी में झलमला रहे हैं। यों तो सारी अमराई, सारा गाँव मेरे परिचितों से भरा था, किन्तु मेरी चिन्छता थी केवल दो जनों से, एक बट दादा और दूसरा था रामी का कुँआ।

बट दादा अमराई के सभी वृद्धों में बड़े थे और सभी उन्हें श्रद्धा और आदर से बट दादा कहा करते थे। ता वे वृद्ध, किन्तु उनका हृदय बालकों से भी सरल और युवकों से भी सरस था। वे अमराई के कुलपति थे। उनमें तपस्वियों का तेज भी था और गृहस्थों की कोमलता भी। उनकी सघन छाया के नीचे लेटकर बीते हुए युगों की वेदना और आह्लाद से भरी कहानियाँ सुनना, रिमझिम-रिमझिम वर्षा में उनकी टहनियों में लुककर बैठे हुए पक्षियों की सरस बरसाती का मज़ा लूटना आज भी याद करके मैं विह्वल हो उठती हूँ ।

ठीक इन्हीं से सटा हुआ रामी का कुँआ था—पक्का, ठोस, सजल, स्वच्छ, गंभीर, उदार। साँझ-सेबरे गाँव की स्त्रियाँ भन्-भन् करती आतीं और अमराई को अपनी कल-कंठ से मुखरित करके कुँएँ से पानी भरकर मुझे भिगोती हुई रौंदती हुई, चली जातीं ।

मेरी चढ़ती हुई जवानी का आदि भी इन्हीं से होता है, मध्य भी इन्हीं से और अन्त भी इन्हीं से। भूलने की चेष्टा करने पर भी क्या कभी मैं इन्हें, भूल सकती हूँ ?

मनुष्य के जीवन का इतिहास प्रायः अपने सगो से नहीं, परायो से बनता है। ऐसा क्यों होता है, समझ में नहीं आता; किन्तु देखा जाता है कि अकस्मात् कभी की सुनी हुई बोली, किञ्चित्मात्र देखा हुआ स्वरूप, घड़ी-दो-घड़ी का परिचय, जीवन के इतिहास की अमर घटना, स्मृति की अमूल्य निधि बनकर रह जाते हैं और अपने सगो का समस्त समाज, अपने जीवन का सारा वातावरण कमल के पत्ते के चारों ओर के पानी की तरफ छल-छल करते रह जाते हैं; उछल-उछलकर आते हैं, बह जाते हैं, टिक नहीं पाते। मैं सोचती हूँ, ऐसा क्यों होता है, पर समझ नहीं पाती।

जैठ के दिन थे। अलस दुपहरी। गरम हवा अमराई के वृक्षों में लुढ़कती फिरती थी। बट दादा ऊँघ रहे थे। एक वृक्ष में लिपटी हुई दो लताओं में झगड़ा हो रहा था। मैं तन्मय हो उनका झगड़ा सुन रही थी, इतने में ही कुएँ ने पूछा—पगडण्डी, सो गई क्या !

‘नहीं तो’ मैंने कहा—इन लताओं का झगड़ा करना सुन रही हूँ।

कुएँ ने हँसकर पूछा—बात क्या है !

मैंने कहा—कुछ नहीं, नाटक का झगड़ा है, दोनों मूर्ख हैं।

कुएँ ने हँसकर कहा—संसार में मूर्ख कोई नहीं होता, परिस्थिति सबको मूर्ख बनाती है। इस अमराई में तुम अकेली हो, कल एक और पगडण्डी बन जाय तो क्या यह संभव नहीं कि फिर तुम दोनों झगड़ने लग जाओ !

मैं तिनक गई। बोली—साधारण बात में भी मेरा जिक्र खींच लाने का तुम्हें क्या अधिकार है !

कुएँ ने पूछा—उन्हें मूर्ख कहने का तुम्हें क्या अधिकार है !

मैंने कहा—मैं सौ बार कहूँगी, हजार बार कहूँगी, वे दोनों मूर्ख हैं, तुम भी मूर्ख हो, सब मूर्ख हैं !

इतने में ही बट दादा भी जग पड़े, बोले—किसको मूर्ख बना रही है !

बात रुक गई, कुआँ चुप हो गया। दो दिन तक बोल-चाल बंद रही।

मैंने जान-बूझकर उससे झगड़ा क्यों किया, इसे वह समझ नहीं पाया ; इसलिए मुझे सन्ताप भी हुआ और ग्लानि भी। स्त्री प्रेम से विह्वल हो जाती है और अपने उच्छ्वसित हृदय के उद्गारों को जब निरुद्ध नहीं कर पाती तब

वह भगड़ा करती है। स्त्री का सबसे बड़ा बल है रोना ; उसकी सबसे बड़ी कला है भगड़ा करना। भगड़ा करके तिनकना, रूठकर रोना, फिर दूसरे को रुलाकर मान जाना, नारी-हृदय का प्रियतम विषय है। पुरुष, चाहे कितना भी पढ़ा-लिखा हो, साहित्यिक हो, दार्शनिक हो, तत्त्वज्ञानी हो, यदि वह इतनी सीधी-सीधी बात नहीं समझ पाता, तो सचमुच मूर्ख है।

यह घटना कुछ नयी नहीं थी, नित्य की थी। कोई छोटी-सी बात लेकर हम भगड़ा पड़ते, आपस में कुछ कह-सुन देते, फिर हफ्तों एक-दूसरे से नहीं बोलते। किन्तु वह बात जिसके लिए मैं सब कुछ करती, सारा भगड़ा खड़ा करती, कभी नहीं होती। कुआँ मुझे कभी नहीं मनाता था। अन्त में हारकर मुझे ही बोलना पड़ता, तब वह बोलने लगता, मानो कुछ हुआ ही नहीं। मैं मन-ही-मन सोचती, यह कैसा विचित्र जीव है कि न तो इसे रूठने से कोई वेदना होती है, और न मनाने से कोई आह्लाद। स्वयं भी नहीं रूठता, केवल चुप हो रहता है ; बोलती हूँ तो फिर बोलने लगता है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। हे ईश्वर ! अपनी रचना की हृदयहीनता की सारी थैली क्या मेरे ही लिए खोल रखी है !

इस घटना पर मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु वह बात रह-रहकर मेरे कानों में गूँज उठती—‘इस अमराई में तुम अकेली हो, कल एक पगडण्डी बन जाय तो क्या यह संभव नहीं कि फिर तुम दोनों भी भगड़ने लग जाओ ? इसका प्रतिवाद मैंने कैसे किया ? उससे भगड़ा किया, उसे मूर्ख बनाया। कुआँ समझता है कि मैं स्त्री हूँ और स्त्री-जाति की कमजोरी मेरी भी कमजोरी है। और इसका प्रतिवाद करने के बदले मैं स्वयं उसके तर्क का प्रतिपादन कर देती हूँ, फिर मूर्ख मैं हुई या वह ?

मुझे रह-रहकर अपनी निर्बलता पर क्रोध आ जाता। यदि उसे मेरे लिए कोई सहानुभूति नहीं, मेरे रूठने की कोई चिन्ता नहीं, मुझे मनाने का आग्रह नहीं, तो फिर मैं क्यों उसके लिए मरने लगी। यदि वह हृदय-हीन है, तो मैं भी हृदय-हीन बन सकती हूँ। यदि वह आत्म-निग्रह कर सकता है, तो मैं भी अपने आप पर संयम रखना सीख सकती हूँ। मैंने कसम खाई कि फिर

उमसे रूठूँगी ही नहीं, और यदि रूठूँगी तो फिर बोलूँगी नहीं, चाहे जा भी हो, प्रेम के लिए स्त्रीत्व को कलङ्कन नहीं करूँगी ।

एक दिन की बात है । आश्विन का महीना था । बरसात अभी-अभी बीती थी । न कीचड़ थी, न धूल । छोटी हरी घासों और जगली फूलों के बीच में होकर मैं अमराई के इस पार से उस पार तक लेटी थी । इस सघन हरियाली के बीच में मुझे देखकर जान पड़ता मानो किसी कुमारी कन्या का सीमन्त हो । शरद मेरे अङ्ग-अङ्ग में प्रतिबिम्बित हो रहा था । मैं कुछ सोच रही थी, सहसा कुएँ ने कहा—पगडण्डी, मुनता हो !

मैंने अन्यायनस्क-सी होकर कहा—कहां ।

उसने कहा—तुम दिनों-दिन मोटी होती जा रही हो ।

मैं कुछ नहीं बोली ।

कुछ ठहरकर वह फिर बोला—तुम पहले जब दुबली थी, अच्छी लगती थी ।

मैंने कहा—अगर मैं मोटी हो गई हूँ, केवल तुम्हें अच्छा लगने के लिए तो मैं दुबली होने की नहीं ।

कुएँ ने कहा—यह तो मैंने कहा नहीं कि दुबली होकर तुम मुझे अच्छी लगोगी ।

मैंने पूछा—तब तुमने कहा क्या !

उसने कहा—कवियों का कहना है कि दुबलापन स्त्रियों के सौन्दर्य को बढ़ा देता है । मोटी होने से तुम कवियों की सौन्दर्य की परिभाषा से दूर हट जाओगी ।

मैंने खीझकर पूछा—तुम तो अपने को कवि नहीं समझते न !

उसने कहा—बिल्कुल नहीं ।

मैंने पूछा—फिर मोटी हो जाने पर मैं कवियों को अच्छी लगूँगी या बुरी, उससे तुम्हें मतलब ?

उसने शान्त भाव से कहा—कुछ भी नहीं, केवल यही कि मैं उस परिभाषा को जानता हूँ और उसे तुम्हें भी बतला देना अपना कर्तव्य समझता हूँ ।

मैंने गंभीर होकर कहा—घन्यवाद !

स्त्री, यदि वह सचमुच स्त्री है, तो सब कुछ सह सकती है, पर अपने रूप का तिरस्कार नहीं सह सकती। स्त्री चाहे घोर कुरूप हो, फिर पुरुष को उसे कुरूपा कहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं। स्त्री का स्त्रीत्व ही संसार का सबसे महान् सौन्दर्य है और उसके प्रति असुन्दरता का संकेत करना भी उसके स्त्रीत्व को अपमानित करना है। स्त्री के स्वरूप का उपहास करना वेसा ही है जैसा पुरुष को कायर कहना। मैं समझ गई कि कुआँ मुझ पर मार्मिक आघात कर रहा है, नहीं उपहास करना चाहता है। मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि चाहे अन्त जो भी हो, मैं भी आज से युद्ध प्रारंभ करूँगी।

उसी दिन रात को चाँदनी खिली थी। रजनीगंधा के सौरभ से अमराई मस्त होकर मूम रही थी। बट दादा पक्षियों को सुलाकर अपने भी सोने का उपक्रम कर रहे थे। बोले—सो गई बेटी ?

मैंने कहा—नहीं दादा, ऐसी चाँदनी क्या सदा रहती है ? मेरे तो जी में आता है कि जीवन-भर ऐसे ही लेटे-लेटे चाँद को देखती रहूँ।

इतने ही में कुआँ बोला—दादा, अमराई में ब्याह के गीत अभी से गाने शुरू करवा दो।

दादा ने पूछा—कैसा ब्याह ?

उसने कहा—देखते नहीं, प्रेम का पहला चरण प्रारंभ हो गया है ; दूसरे चरण में कविताएँ बनेंगी, तीसरे चरण में पागलपन का अभिनय होगा, चौथे चरण में सगाई हो जायगी।

मुझे मन-ही-मन गुदगुदी-सी जान पड़ने लगी। सोचा, आज इसे खिभाऊँगी। मैंने हँसकर कहा—दादा, देखो, अपने-अपने भाग्य की बात है। ईश्वर ने तुम्हें इतना ऊँचा बनाया है। तुम अपनी असंख्य अजुलियों से सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का अजस्र पान करते हो और किसी एकान्त से आती हुई वायु में अनन्त स्नान करके विस्तृताकाश में सिर उठाकर प्रकृति की अनन्त विभूतियों का अनुशीलन करते हो। नक्षत्रों से भरी हुई रात में शत-शत पक्षियों को गोद में लिये हुए तुम चन्द्रलोक की कहानी सुना करते हो, उषा और गोधूलि नित्य तुम्हें स्नेह से चूम लिया करते हैं, प्रकृति का

अनन्त भाण्डार तुम्हारे लिए उन्मुक्त है। मैं तुम्हारे जैसी ऊँची तो नहीं हूँ, फिर भी दूर तक फैली हूँ। वसुन्धरा अपनी सुषमा मेरे सामने बिखेर देती है, आकाश सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का जाल मेरे ऊपर फैला देता है। वसन्त की मादकता, सावन की सजल हरियाली और शरद् की स्वच्छ सुषमा मेरे जीवन में स्फूर्ति प्रदान करती हैं। मैं केवल जीती ही नहीं, जीवन का उपभोग भी करती हूँ। किन्तु मुझे दुःख उन लोगों को देखकर होता है, जिन्हें न तो सूर्य का प्रकाश मिलता है, न चन्द्रमा की किरणें; अन्धकार ही जिनके जीवन की भित्ति है और सूनापन ही जिनकी एक कहानी। वे आकाश को उतना ही बड़ा समझते हैं, जितना उनके भीतर समाता है, वसुन्धरा को उतनी ही दूर तक समझते हैं, जितना वे देख सकते हैं। दादा ! उनका अस्तित्व कैसा दयनीय है, तुमने कभी सोचा है ?

दादा कुछ नहीं बोले, शायद सो गये थे। लेकिन कुआँ बोला—सुन रहे हो, दादा ! पगडण्डी कितना सच कह रही है ! ऐसे लोगों से अधिक दयनीय जीवन किसका होगा ! कुछ दिन पहले मैं भी यही सोचा करता था, किन्तु मुझे जान पड़ा कि संसार में और भी अधिक दयनीय जीवन हो सकता है। ईश्वर ने जिसे सूर्य और चन्द्रमा के आलोक से वञ्चित रखा, आकाश का विस्तार और वसुन्धरा का वैभव जिसे देखने नहीं दिया, उस पर दया करके कम-से-कम उसे एक ऐसी चीज़ दे दी, जिससे वह संसार का उपकार कर सकता है, जिसे वह अपना कह सकता है, जिसके द्वारा वह संसार का किसी-न-किसी रूप में लक्ष्य बन सकता है। किन्तु उससे अधिक दयनीय तो वे हैं जिनके सामने सृष्टि का सारा वैभव बिखरा पड़ा है, किन्तु जिनके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं। रेखागणित की रेखा की तरह उनका अस्तित्व तो है, किन्तु उनकी मुट्ठाई, लम्बाई, चौड़ाई सब कुछ काल्पनिक है। उनका अस्तित्व किसी दूसरे के अस्तित्व में अन्तर्निहित है ! वे सभी के साधन हैं, किन्तु लक्ष्य किसी के भी नहीं। ऐसे लोग भी दुनिया में हैं। दादा, क्या उन पर तुम्हें दया नहीं आती ?

दादा बिल्कुल सो गये थे। मैंने तैय में आकर कहा—रामी के कुआँ, यदि तुम समझते हो कि तुम संसार के लक्ष्य हो और मैं केवल साधन-

मात्र, तो यह तुम्हारी भूल है। संसार में जो कुछ है, साधन ही है, लक्ष्य कुछ भी नहीं। लक्ष्य शब्द मनुष्य की उलझी हुई कल्पना का फल है ! लक्ष्य एक भावना-मात्र है, स्थूल और प्रत्यक्ष रूप में जिस किसी का अस्तित्व है, वह साधन ही है, चाहे जिस रूप में हो।

कुएँ ने गभीर स्वर में कहा—तुमने मेरा पूरा नाम लेकर पुकारा इसके लिए धन्यवाद ! मैं उत्तर में केवल दो बातें कहूँगा। पहली तो यह कि हमारा और तुम्हारा कोई अपना भगड़ा नहीं है, मैं समझता हूँ, व्यक्तिगत रूप से न तुमने मुझे कुछ कहा है, न मैं तुम्हें कुछ कह रहा हूँ। दूसरी बात यह है कि जैसा तुम कह रही हो, लक्ष्य और साधन में प्राकारिक अन्तर न होते हुए भी पारिमाणिक अन्तर है। संसार में लक्ष्य नाम की कोई चीज़ नहीं, ठीक है; यहाँ जो कुछ है, किसी-न किसी रूप में साधन ही है, यह भी ठीक है। फिर भी मानना पड़ेगा कि साधनों में कुछ साधन ऐसी अवस्था में हैं, जिन्हें साधन के अतिरिक्त दूसरा कुछ कहा ही नहीं जा सकता, और कुछ साधन ऐसी अवस्था में पहुँच गये हैं, जिन्हें संसार अपनी सुविधा के लिए लक्ष्य ही कहना अधिक उपयुक्त समझता है। इसका प्रत्यक्ष स्थूल प्रमाण यह है कि कुछ लोगों के यहाँ संसार आता है, हाथ फैलाकर कुछ माँगता है और फिर चला जाता है, संसार की स्थूल व्यावहारिक भाषा में वे तो हुए लक्ष्य और कुछ लोग हैं ऐसे जिनके यहाँ संसार आता है, किन्तु इसलिए नहीं कि वह उनसे कुछ लेना चाहता है, बल्कि इसलिए कि उनके द्वारा वह अपने लक्ष्य के पास पहुँच सकता है; तुम्हारी सूक्ष्म दार्शनिक भाषा में ऐसे लोग हुए साधन। समझी ?

मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि उसने रोक दिया, कहा—देखो, तुम्हारी चाँदनी डूब गई, अब तो सो सकती हो या नहीं ?

कुछ दिन और बीते। मेरे प्रेम की आग पर आत्माभिमान की राख पड़ने लगी। कुआँ संसार का लक्ष्य है, मैं केवल एक साधन हूँ। फिर मेरा उसका प्रेम कैसे हो सकता है ! मैं कभी-कभी सोचती, प्रेम में प्रतियोगिता कैसी ? मान लो, वह संसार में सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं, फिर भी क्या यह यथेष्ट कारण है कि यदि मैं उससे प्रेम करूँ तो वह उसका प्रति-

दान न दे ! कुआँ अपने सांसारिक महत्व के गर्व में चूर है । वह समझता है कि उसके सामने मैं इतनी तुच्छ हूँ कि मुझसे प्रेम करना तो दूर रहा, भर-मुँह बोलना भी पाप है । वह मुझसे घृणा करता है, मेरा उपहास करता है, बात-बात में मुझे नीचा दिखाना चाहता है । बर्बर पुरुष जाति !

मैं दिनों-दिन उससे दूर दूटने की चेष्टा करने लगी । उसके सामीप्य में मेरा दम घुटने लगा । वह महत्त्वशाली है, संसार उसके सामने भिखारी बन-कर आता है और मैं ! मेरा तो कोई अस्तित्व ही नहीं, किसी लक्ष्य तक पहुँचने का एक साधन-मात्र हूँ । मेरी उसकी क्या तुलना ।

संभ-सबरे गाँव की झियाँ आतीं और पानी भर ले जातीं । अलस दुपहरी में पथिक अमराई में विश्राम करने के लिए आते और कुएँ के पानी में सत्तू सानकर खाते, फिर थोड़ी देर वृद्धों के नीचे लेटकर अपनी राह चले जाते । गाँव के छोटे-छोटे लड़के अमराई में आकर फल तोड़ते, कुएँ से पानी खींचते और फिर फल खाकर मुँह-हाथ धोकर चले जाते । जहाँ देखो, उसी की चर्चा, उसी की बात । मैं अपनी नगण्यता पर मन-ही-मन कुढ़कर जली-सी जाती । मुझे जान पड़ता, मानो संसार मेरा उपहास कर रहा है, आकाश मेरा तिरस्कार कर रहा है, पृथ्वी मेरी अवहेलना कर रही है । मेरा अस्तित्व रेखागणित की रेखाओं और बिन्दुओं का अस्तित्व है । मैं सबकी हूँ, पर मेरा कोई नहीं । मैं भी अपनी नहीं, केवल संसार को किसी लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए साधन सी बनकर जी रही हूँ । मुझे यहाँ से दूटना ही पड़ेगा । चाहे जहाँ भी जाऊँ, जाऊँगी ज़रूर । हृदय की शान्ति की खोज में वन-वन भटकूँगी, वसुन्धरा के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के अनन्त विस्तार को छान डालूँगी, यदि कहीं शान्ति नहीं मिली तो किसी मरुभूमि की विशाल सैकत राशि में जाकर विलीन हो जाऊँगी, या किसी विजन पर्वत-माला की अँधेरी गुफा में जाकर सो रहूँगी, फिर भी यहाँ न रहूँगी । वहाँ से मैं दूटने का उपक्रम करने लगी ।

आधी रात थी । चाँदनी और अन्धकार अमराई के वृद्धों के नीचे गाढ़ालिगन में बंधे सो रहे थे । मुझे उस रात की सारी बातें अब भी याद हैं, मानो अभी कल ही की हों । मैं अपने अतीत जीवन की कितनी ही

छोटी-छोटी स्मृतियाँ सहेज रही थी। इतने में कुँएँ ने पुकारा—पगडण्डी !

निश्चीय के सूनेपन में उसकी आवाज़ गूँज उठी ! मैं चौंक पड़ी। इतने दिनों के बाद आज कुआँ मुझे पुकार रहा है, मेरा कौतूहल उमड़ने लगा।

मैंने कहा—क्या है ?

कुआँ थोड़ी देर चुप रहा, फिर पुकारा—पगडण्डी !

शायद उसने मेरा बोलना सुना ही नहीं। मुझे आश्चर्य होने लगा, क्या आज कोई अभिनय होगा ? मैंने संयत स्वर में कहा—क्या है ?

कुआँ बोला—पगडण्डी, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ।

मैंने कहा—पूछो।

वह बोला—शायद तुम यहाँ से कहीं जा रही हो ?

उस समय बिजली भी गिर पड़ती तो मुझे उतना आश्चर्य न होता। इसे कैसे मालूम हुआ ? यदि मान लूँ कि किसी तरह मालूम भी हो गया, तो फिर इसे क्या मतलब ? मैं क्षण-भर में ही न जाने क्या-क्या सोच गई, कितने ही भावों से मेरा हृदय उथल-पुथल हो उठा, किन्तु मैंने सारा आवेग रोककर उदासीन स्वर में कहा—हाँ !

कुआँ थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला—तुम इस अमराई से जा रही हो, अच्छा है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

मैं कुछ उत्तर देने जा रही थी, तब तक उसने रोक दिया—ठहरो, मेरा बात सुन लो। जब तुम पहले-पहल यहाँ आई थीं, तब कितना प्रसन्न मैं हुआ था, उतना और कोई नहीं। आज जब तुम यहाँ से जा रही हो, तब भी जितनी खुशी मुझे हो रही है, उतनी और किसी को नहीं। तुम इसका कारण जानती हो ?

मैं कुछ नहीं बोली।

वह कहने लगा—मैं तुम्हें किसी दिन कहनेवाला ही था ! तुमने स्वयं जाने का निश्चय कर लिया। यह और भी अच्छा हुआ।

मैंने अन्यमनस्क-सी कहा—संसार में जो कुछ होता है, अच्छा ही होता है।

कुआँ बोला—पगडण्डी, तुम यहाँ से जा रही हो, संभावना यही है

कि फिर तुम कभी लौटकर नहीं आओगी। तुम्हारे जाने के पहले मैं तुमसे अपने हृदय की एक बात, एक चिरसंचित बात कहूँगा, सुनोगी तो ?

मेरे हृदय में उस समय दो धाराएँ बह रही थीं ; एक संशय की, दूसरी विस्मय की। फिर भी इतना है कि संशय से अधिक मुझे विस्मय ही हुआ। मैंने सारा कोतुहल दबाकर कहा—कहते जाओ।

कुआँ कहने लगा—मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है। केवल दो बातें हैं। मैंने तुमसे कभी नहीं कहा था। इसका कारण यह है कि अब तक कहने का समय नहीं आया था। तुम अब जा रही हो, जान पड़ता है वह समय आ गया, इसलिए कह रहा हूँ।

थाड़ा रुककर, फिर अपने स्वाभाविक दार्शनिक ढङ्ग से उसने कहना शुरू किया—

पहली बात यह है कि तुम्हारे प्रति अगाध प्रेम होते हुए भी आज तक मैंने जाहिर क्यों नहीं होने दिया। मुझे याद है, जिस दिन आकाश के ज्योतिष्पथ की तरह तुम पहले-पहल इस अमराई में आकर बिछ गई, उस दिन मैंने बट दादा से पूछा—दादा, यह कौन है ? दादा ने विनोद से कहा—तुम्हारी बहू ! मैं भोग गया। तबसे लेकर आज तक एक युग बीत गया ! कितने वसंत आये, कितनी बरसातें आईं, इस अमराई की सघन छाया में हम दोनों ने कितनी कदनियाँ सुनीं, कितने गीत सुनकर फिर भूल गये और कितनी बार हम आपस में लड़े-भगड़े हैं। इस अतीत जीवन की छोटी-से-छोटी घटना भी मेरे स्मृति-पट पर अमर-रेखा बनकर खिंच गई है और उन टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं को जोड़कर जो अक्षर बनते हैं, उसका एकमात्र अर्थ यही निकलता है कि इस अमराई में छोटी, पतली-सी जो एक पगडण्डी है, उस पगडण्डी के सूने उपेक्षित जीवन का जो निष्कर्ष है वह किसी एक युग या एक देश का नहीं, विश्व-भर का अनन्तकाल के लिए आलोक-स्तंभ बन सकता है। वह न रहें, किन्तु उसकी कथा युग-युग तक कल्पना लोक के विस्तृताकाश में स्त्रीत्व का आदर्श बन आकाश-दीप-सी झलमिलाती रहेगी।

किन्तु इतना होते हुए भी आज तक मैंने तुमसे कभी कुछ कहा क्यों नहीं ?

इतना ही नहीं, मैंने अब तक तुम्हारे प्रति केवल उदासीनता और कठोरता के भाव ही प्रकाशित किये । नीरस उपेक्षा, आलोचनात्मक विनोद, इसके अतिरिक्त मुझे याद नहीं, मैं और भी तुम्हें कुछ दे सका हूँ या नहीं ! किन्तु क्यों ? केवल एक ही कारण था ।

पगडण्डी, मैं तुम्हें जानता था, तुम्हारे हृदय को अच्छी तरह पहचानता था । मैं तुम्हारे जीवन का दार्शनिक अध्ययन कर रहा था । मैं जानता था, संसार के कल्याण के किस अभिप्राय को लेकर तुम्हारे जीवन का निर्माण हुआ है । मैं जानता था, किस लक्ष्य को लेकर विश्व की रचनात्मक शक्ति ने तुम्हें स्वर्ग से लाकर इस अमराई की घासों और पत्तों की सेज पर सुला दिया है । मैं यह भी जानता था कि तुम्हारे अवतरण का जो अन्तर्निहित अभिप्राय है, वह किस पथ पर चलकर तुम अधिक से अधिक प्राप्त कर सकती हो ।

जिस महान् उद्देश्य को लेकर तुम जन्मी हो, उसे मैं जानता हूँ, इच्छा रहते हुए भी मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता । किन्तु हाँ, एक बात कर सकता हूँ । गायक अपनी तान को आरोह-अवरोह के बीच में नचाता हुआ ले जाकर सम पर बिठा देता है । सुननेवाले उसे सहायता नहीं दे सकते, फिर भी अन्त में सम पर एक बार सर हिला देते हैं । तान लौटकर घर आ गई, सबका सर हिल गया । पगडण्डी, अपने जीवन के उच्चादर्श का तुम्हें अकेले ही निभाना पड़ेगा, मैं केवल इतना हाँ कर सकूँगा कि जिस दिन तुम्हारे जीवन की तान लौटकर घर आ जायगी, उस दिन उस संगीत में अपने को बहाकर सर हिला दूँगा । तुम्हारे जीवन-संगीत के सम पर अपने को निछावर कर दूँगा, बस ।

प्रेम से स्वर्ग मिलता है, किन्तु उससे भी ऊँचा, उससे भी पवित्र एक स्थान है । उसका वही पथ है जिस पर तुम जा रही हो, सेवा । प्रेम सभी कर सकते हैं, किन्तु सेवा सभी नहीं कर सकते । प्रेम करना संसार का स्वभाव है, किन्तु सेवा एक साधना है । प्रेम हृदय की सारी कोमल भावनाओं का आकुंचन है, सेवा उनका प्रसार । प्रेम में स्वयं लक्ष्य बनकर अपना एक कोई लक्ष्य बनाना पड़ता है, सेवा में अपने को संसार का साधन बनाकर संसार को अपनी साधनाओं की तपोमणि बना देना पड़ता है ।

प्रेम यज्ञ है और सेवा तपस्या । प्रेम से प्रेमिक मिलता है और सेवा से ईश्वर ।

जन्म से लेकर आज तक तुम सेवा के पंथ पर ही रही हो और अब भी उत्तरोत्तर उसी पर आगे बढ़ती जा रही हो । तुम्हारे मार्ग में जो सबसे बड़ा विघ्न बनकर खड़ा हो सकता है वह है प्रेम । प्रेम मनुष्यत्व है और सेवा देवत्व । तुम्हारी आत्मा स्वर्गिक होते हुए भी तुम्हारा शरीर भौतिक है । आत्मा और शरीर का द्वन्द्व संसार की अमर कहानी है । वसंत जब अपना मधु-कलश पृथ्वी पर उड़ेल देता है, वर्षा जब वन-वन में हरियाली बिखरा देती है, शरद् के शुभ्राभ्र-खंड जब आकाश में तैरने लगते हैं, तब आत्मा की साधनाओं में शरीर छोटे-छोटे सपने छोट देता है; सामवेद की मधुर गंभीर ध्वनि में मेघ-मलार की मस्तानी तानें भीन जाती हैं, सोमरस में कादंब की बूँदें चू पड़ती हैं, कैलाश में वसंत आ जाता है । यह बहुत पुरानी कथा है । युगयुगान्तर से यही होता आया है, और यही होता रहेगा । फिर भी सभी इसे भूल जाते हैं । आँखें झप जाती हैं, तपस्या के शुभ्र प्रत्यूष में अनुाग की अरुण उषा छिटक पड़ती है, साधना का बर्फ गलने लगता है, लगन की आग मँभाने लगती है, हृदय की एकान्तता में किसी की छाया घुस पड़ती है, जागृत में अँगड़ाई भर जाती है, स्वप्नों में मादकता भीन जाती है, और...और जब आँखें खुलती हैं तब कहीं कुछ नहीं रहता । फिर से नई कहानी शुरू होती है—नई यात्रा होती है, नया प्रस्थान होता है । इसी तरह यह संसार चलता है ।

आत्मा के ऊपर शरीर का सबसे बड़ा प्रभाव है संशय । जब संसार में सभी किसी-न-किसी से प्रेम करते हैं, सभी का कोई-न-कोई एक अपना है, जब किसी से प्रेम करना, किसी के प्रेम का पात्र बनना प्राणिमात्र का अधिकार है, तब फिर मैं—केवल मैं ही — क्यों इससे वञ्चित रहूँ ? यह जीव की अमर समस्या है, शाश्वत प्रश्न है ।

किन्तु सत्य क्या है, लोग यह समझने की बहुत कम चेष्टा करते हैं । जिनके पैर हैं वे ज़मीन पर चलते हैं, किन्तु जिन्हें पंख मिले हैं यदि वे भी ज़मीन पर ही चलें, तो यह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग है । जिन्हें ईश्वर ने

आकाश में उड़ने के लिए बनाया है, उनके लिए पृथ्वी पर चलना अपने महत्त्व की उपेक्षा करना है, अपने आपको भूलना है—

प्रेम करने की योग्यता सबमें है; किन्तु सेवा करने की शक्ति किसी-किसी को ही मिलती है। सेवा करने की योग्यता रखना दण्ड नहीं, ईश्वर का आशीर्वाद है। जिसे ईश्वर ने संसार में अकेला बनाया है, धन-वैभव नहीं दिया है, सुख में प्रसन्न होनेवाला और दुःख में गले लगाकर रोनेवाला साथी नहीं दिया है, संसार के शब्दों में जिसे उसने दुःखिया बनाया है, उसके जीवन में उसने एक महान् अभिप्राय भर दिया है, शक्ति का एक अमर स्रोत, बेचैनी की तड़फड़ाती हुई आँधी, उसके अन्तर में सँजोकर रख दी है। हो सकता है वह इसे न समझे, शायद संसार भी इसे न समझे; फिर भी वह नहीं है, ऐसी बात नहीं; वह है, आवश्यकता है केवल उसे समझने की।

पगडण्डी, तुम ईश्वर की उन्हीं रचनाओं में से एक हो। तुम्हारा निर्माण इसलिए नहीं हुआ है कि तुम एक की होकर रहो, एक के लिए जियो और एक के लिए मरो। नहीं, तुम पृथ्वी पर एक बहुत बड़ा उद्देश्य लेकर आई हो। जेठ की धधकती हुई लू में, भादों की अजस्र वर्षा में और शिशिर के नुषार-पात में इसी तरह लेटी रहकर तुम्हें असंख्य मनुष्यों को घर में बाहर और बाहर से घर पहुँचाना पड़ेगा। सभ्यता के विस्तार के लिए, जीवन के सौख्य के लिए, संसार के कल्याण के लिए तुम्हें बड़ा-से-बड़ा त्याग करना पड़ेगा। तुम्हारा कोई नहीं है, इसलिए कि सभी तुम्हारे हैं; तुम किसी की नहीं हो, इसलिए कि तुम सभी की हो। तुम अपने जीवन का उपभोग नहीं करती हो, तुम विश्व की अक्षय विभूति हो।

आज के पहले मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं कहा था, कारण यह था—पगडण्डी, मेरी स्पष्टवादिता को क्षमा करना, कि तुम्हारी प्रात्मा सोई हुई थी, केवल शरीर जगा था। तुम नहीं समझती थी कि तुम कौन हो, किसलिए यहाँ आई हो, तुम संसार के पुराने पथ पर चलना चाहती थी। आज, चाहे जिस कारण से हो, तुम्हें अपने वर्तमान जीवन से अन्तोष हो गया है, तुम्हें अपने से घृणा हो आई है। आज तुम अनन्त में कूदने जा रही हो, संसार

मैं कुछ करने जा रही हो, तुम्हारी आत्मा जग उठी है। इन बातों को कहने का मुझे आज ही अवसर मिला है।

पगडण्डी, तुम ऐसा न समझना कि मैं तुमसे स्नेह नहीं करता, उससे भी अधिक मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। फिर भी अपने व्यक्तित्व को तुम्हारे पथ में खड़ा करके मैं तुम्हारी आत्मा की प्रगति को रोकना नहीं चाहता। मैं तुम्हारी चेतना में अपनी छाया डालकर उसे मलिन नहीं करना चाहता। तुम्हारी संगीत-लहरी में अपवादी स्वर बनकर उसे बेसुरा बनाना नहीं चाहता। मैं बड़े उल्लास से तुम्हें यहाँ से बिदा करता हूँ। जाओ—संसार में जहाँ तुम्हारा अधिक उपयोग हो सके, वहाँ जाओ और अपने जीवन को सार्थक बनाओ—यही मेरी कामना है, यही मेरा सन्देश है, यही मेरा...क्षमा करना... आशीर्वाद है।

केवल एक बात और कहनी है। मेरी हृदयहीनता को भूल जाना—हो सके तो क्षमा कर देना। मेरे भी हृदय है, उसमें भी थोड़ा रस है, पर मैंने जान-बूझकर उसे सुखा दिया, उसे आँखों में नहीं आने दिया, आँठों पर से पोछ डाला। तुम्हारे कर्तव्य-पथ को मैं अपने आसुओं से गीला नहीं बनाना चाहता—पगडण्डी, मेरी कथा समझने की कोशिश करना, यदि न समझ पाओ तो...तो फिर सब कुछ भूल जाना।

संसार तुम्हारी राह देख रहा है, अनन्त तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जाओ, अपना कर्तव्य पालन करा। संसार तुम्हें कुचले तो तड़पना नहीं, भूल जाय तो सिझना नहीं। भूले हुए पाँथकों का घर पहुँचा देना, जो घर छाँड़कर विदेश जाना चाहते हैं उनकी सहायता करना। जब तक जीना, खुश रहना, कभी किसी के लिए रोना नहीं और—एक बात और—यदि तुम्हारे हृदय में कभी प्रेम की भावना आ जाय, तो कोशिश करके, अपने अस्तित्व का सारा बल लगाकर, उसे निकाल डालना। यदि न निकाल सको, तो फिर वहाँ से कहीं दूर—बहुत दूर—चली जाना।

पगडण्डी ! विदा ! तुम अपने ज्योतिर्मय भविष्य में अपने धुँचले अतीत को डुबो देना। सब कुछ भूल जाना—बट दादा और रामी के कुआँ को भी

भूल जाना ! केवल यही याद रखना कि तुम कौन हो और तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है—बस जाओ, विदा !—ईश्वर तुम्हें बल दे ।

कुप्रां चुन हो गया । आधी रात की स्वप्निल नीरवता में जान पड़ता था, उसका स्वर अब भी गूँज रहा हो, शब्द अन्तरिक्ष में अब भी घुमड़ते फिरते हैं । मैं कुछ बोल नहीं सकी, सोच भी नहीं सकी । तन्द्रा-सी छा गई, काठ-सा मार गया । उसके अन्तिम शब्द अर्धरात्रि के शून्य अन्धकार में बिजली की अक्षरों में मानो चारों ओर लिखे हुए से उग रहे थे,—‘बस जाओ, विदा, ईश्वर तुम्हें बल दे !’

ठीक-ठीक याद नहीं आता, कितने दिन हुए, फिर भी एक युग-सा बीत गया । मेरी आँखों के सामने वह स्वरूप आज भी रह-रहकर नाच उठता है, कानों में वे शब्द अब भी रह-रहकर गूँज उठते हैं ।

अब मैं राजधानी का राजमार्ग हूँ । दोनों ओर सहेलियों की तरह दो फूट-पाथ हैं, धूप और वर्षा से बचाने के लिए दोनों ओर वृक्षों की कतारें हैं, रांशनी के लिए बिजली के खंभे हैं, और न-जाने विभव-विलास की कितनी चंज़ें हैं । नित्य मेगा शृंगार होता है, मेरी देख-रेख में हजारों रुपये खर्च किये जाते हैं, राज महिषी की तरह मेरा सत्कार होता है, जहाँ तक दृष्टि जाती है—बस, मैं ही मैं हूँ ।

उत्तरदायित्व भी कम नहीं है । मैं शहर की धमनी हूँ, इसका रक्त-प्रवाह मुझी से होकर चारों ओर दौड़ता है । मैं सभ्यता का स्तम्भ हूँ, राज सत्ता का प्राण हूँ । इतनी भीड़ रहती है कि सोचने की फुसंत भी नहीं मिलती । जन-समुद्र की अनन्त लहरें मुझे कुचलती हुई एक ओर से दूसरी ओर निकल जाती हैं, मैं उफ़ तक नहीं करती । इतनी भीड़ में मुझे अपना कहनेवाला एक भी नहीं, एक क्षण के लिए भी मेरा होनेवाला कोई नहीं । मेरे जलते हुए निविश्राम जीवन पर सहानुभूति की दो बूँद छिड़क दे, ऐसा कोई नहीं । फिर भी मैं व्यथित नहीं होती ; खुश रहने की कोशिश करती हूँ, वेदना के शोलों पर मुस्कराहट की राख बिखेरती रहती हूँ, ओठों में हृदय को छिपाये रखती हूँ । जहाँ तक होता है, उसने जो कुछ कहा था, सब करती हूँ । केवल एक ही बात नहीं होती, उसे भूल नहीं पाती ।

अमराई की छाया में घासों और पत्तों पर वह जीवन, पक्षियों के गाने, लताओं का झगड़ा, बट दादा की कहानियाँ, और...और क्या कहूँ ! कितनी बातें हैं जो भुलाई नहीं जा सकती ! मेरे जीवन-संगीत की तान लौटकर सम पर आती है, आकर फिर लौट जाती है, पर किसी का धिर नहीं हिलता !

यह पुराना इतिहास है । कोई क्या जाने ! एक समय था जब मैं ऐसी नहीं थी !

— —

